पण्डित कृष्णकान्त मालवीय की हिन्दी-सेवा चिरस्मरणीय रहेगी। उन्हीं के प्रोत्साहन से बहुत से नवयुवकों ने हिन्दी लिखना प्रारम्भ किया। "मर्यादा" और "अभ्युदय" द्वारा हिन्दी साहित्य को बल मिला। कृष्णकान्तजी की लेखनी में शक्ति थी, उनके विचार गम्भीर थे, अपने विचारों को निडर होकर व्यक्त करते थे। यह सन्तोष की बात है कि उनके कुछ लेखों का संग्रह पुस्तकाकार में प्रकाशित हो रहा है। इन्हें पढ़ते हुए लेखक का स्वरूप सामने आ जाता है। ऐसे निश्चल और भावुक देश-प्रेमी और देशसेवक बहुत कम हैं। इनकी पुस्तकों का हिन्दी संसार आदर करेगा।

१२-४-४७ **अमरनाथ झा**

'विश्व का राजनैतिक भविष्य' नामक पुस्तक की विशेषता के लिए उसके लेखक स्वर्गीय कृष्णकान्तजी का नाम ही पर्याप्त है। वे अपने विषय के विशेषज्ञ थे। पुस्तक हम हिन्दी पाठकों के लिए बोधप्रद होगी, इसका कहना ही क्या?

चिरगाँव
अखती २००४ **मैथिलीशरण गुप्त**

पं० कृष्णकान्त मालवीय गौरव-ग्रन्थागार—प्रथम स्तम्भ

विश्व का राजनैतिक भविष्य

लेखक
पण्डित कृष्णकान्त मालवीय

सम्पादक
पण्डित रामभरोस मालवीय

प्रथमावृत्ति] १९४७ [मूल्य दो रुपया

दो शब्द

अतीत के वे क्षण—कितने सरस और सुमधुर थे अहा ! प्रत्येक क्षण के कण में निहित था जीवन का निर्माण, अपूर्व कौशल, पुलकता हुआ उन्माद ! किन्तु······

वे चल-चित्र—मानस चित्र-पट पर अंकित होकर भी अदृश्य—अचिन्त्य बने—सूत्रधार के तिरोहित होते ही !

अब तो—अधिकृत है एक मर्मभरी वेदना ! साथ लिए अश्रुत, अपूर्व कसक, जो रह-रहकर उठाती है, कलेजे में टीस !

क्योंकि—मैं भी था······हृदय का एक टुकड़ा !

उन्हीं के मुख से—कहते हुए यह सुना था—मेरे लिए तुम वैसे ही प्रिय हो जैसे बच्चा ! कैसी थी अनिर्वचनीय आत्मीयता ! तब न जाना अब पहिचान पाया—धिक् प्रमाद !

चरमोद्‌गार—फूट पड़े थे प्रयाण बेला में !—"तुम मेरे शरीर से प्रेम न करो गुणों से प्रेम करो, बस सदा सुखी रहोगे !"

उत्तर में—कुछ नहीं अश्रु भी सूख गये थे नेत्रों के ! निकल पड़ी एक अव्यक्त आह !

तत्पश्चात्—महाप्रस्थान हुआ उस महापुरुष का !

मरणं प्रकृतिः शरीरिणाम्

जो उत्पन्न हुआ है, वह मरेगा अवश्य यह प्रकृति का अटल नियम है। प्राचीन कालिक इतिहास के पृष्ठ हमें सान्त्वना और प्रमाण दे रहे हैं कि आसमुद्र जिनका विशाल साम्राज्य था, जो आनाकरथवर्त्म थे ऐसे सम्राट् क्षितीश एवं राम, कृष्ण, बुद्ध जैसे ईशावतार इस संसार से मुख मोड़कर चल दिये तो क्षुद्र मानव के लिए आश्चर्य क्या ? फिर भी मृत्यु एक विभीषिका है, जिसका नाम सुन कर हृदय काँप जाता

है। परन्तु महापुरुषों के जीवन और मृत्यु दोनों लोकशिक्षण के लिए हुआ करते हैं। अतः रोने के बजाय उनके अनुकरण करने की प्रवृत्ति होनी चाहिए। मनस्वी व्यक्ति के लिए मृत्यु शाश्वत सुख की एक चिर निद्रा है। उसका आलिंगन वह प्रेम और निर्भयता से करता है। वह जीवन-मरण के रहस्य को समझता हुआ करणीय कर्म किया करता है। पद-पद पर अटके हुए रोड़ों की परवाह न कर कर्त्तव्य-पथ पर डटा रहता है। वह मरने से हिचकता नहीं, अपने किए जाने वाले अधूरे कार्यों पर हताश न होकर दृढ़ता और गर्व के साथ विश्वास रखता है कि मेरे बाद मेरे पथानुगामी इसे अवश्य पूरा करेंगे। इसीलिए मनस्वी महापुरुष मरकर भी अमर रहते हैं।

वे श्रद्धेय

स्व० पं० कृष्णकान्तजी मालवीय ऐसे ही मनस्वी महापुरुष थे जो अपने जीवन में प्रतिक्षण मृत्यु का स्वागत करने को तैयार रहते। उन्हें जीने की अभिलाषा न थी बल्कि कर्त्तव्य करने की। उन्हें नाम की कामना न थी बल्कि काम की चाहना थी। वे एक कर्त्तव्यनिष्ठ मनस्वी कर्मवीर योद्धा थे जो मृत्यु-पर्यन्त कराल काल की अवहेलना करते हुए कर्त्तव्य-कर्म करते रहे।

जीवन में बड़े से बड़े प्रलोभन, ऐश्वर्य उन्हें न डिगा सके। तरह-तरह की कठिनाइयाँ, कुत्सित आलोचनाएँ उन्हें कभी भी विचलित न कर सकीं। जब कि आज की दुनिया ऐश्वर्य, कीर्ति और पद के लिए मतवाली होकर ध्येय और सिद्धान्त का बलिदान करने से नहीं हिचकती तब पं० कृष्णकान्तजी मालवीय ऐसे सपूत ने राष्ट्रयज्ञ में प्राणों की आहुति देकर ध्येय और सिद्धान्त की रक्षा की है।

ऐसे सत्य-निष्ठ विद्वान की तपःपूत लेखनी का प्रसाद **'विश्व का राजनैतिक भविष्य'** है। जिसमें विश्व की राजनीति का त्रिकाल-दर्शन विद्यमान है।

चालीस वर्ष की 'अभ्युदय' की फाइलों के अगाध उदधि का मन्थन करने पर जो रत्न हाथ लगे उनमें से यह एक 'विश्व का राजनैतिक भविष्य है।' जो वर्तमान राजनैतिक घनान्धकार में प्रकाश दे रहा है और मुझे उऋण कर रहा है। यह,

'विश्व का राजनैतिक भविष्य'

स्वर्गीय आदरणीय पं० कृष्णाकान्तजी मालवीय का वाङ्मय शरीर है तो उनका स्थूल शरीर उन्हीं की आत्मा की प्रतिच्छाया पं० पद्मकान्त मालवीय हैं। अपने श्रद्धेय आराध्य की सूक्ष्म और स्थूल झाँकी के दिव्य-दर्शन अनवरत प्राप्त करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त है।

बस जीवन का यही परम ध्येय और परम लाभ है। और कोई कामना शेष नहीं है। यदि हिन्दी-भाषा-भाषी जनता क्रान्तदर्शी तपोधन की इस वाङ्मयी-निधि को उत्साह से अपनायेगी तो इसके बाद मालवीय-ग्रन्थागार का द्वितीय स्तम्भ भी शीघ्र ही भेंट किया जायगा जिसमें महान् मेधावी परम राष्ट्रवादी की वह क्रान्तिकारणी विद्वत्तापूर्ण निर्भीक वक्तृता भी रहेगी जो केन्द्रीय असेम्बली के इतिहास में 'न भूतो न भविष्यति' कही जा रही है। जिसके लिए स्व० पूज्य महामना पं० मदनमोहनजी मालवीय ने प्यार और गर्व से कहा था कि—"कृष्णा अपनी इस वक्तृता से अमर हो गया।"

इस स्थल पर यदि मैं बीसवीं सदी के सर्वमान्य महाकवि, अनुभवी पत्रकार प्रतिभाशाली विद्वान् मध्यप्रान्त के मंत्री माननीय पं० द्वारका-प्रसाद जी मिश्र के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करूँ तो मेरा कर्त्तव्य ही होगा विडम्बना नहीं, जिन्होंने पुस्तक की भूमिका लिखकर अपनी उदारता और लेखक के प्रति स्नेह तथा मेरे प्रति अनुग्रह का परिचय दिया।

अनुभवी विद्वान् की लेखनी से लिखी गयी पुस्तक सर्वथा निर्दोष और 'सत्यं, शिवं, सुन्दरम्' से ओत-प्रोत है। तथापि यदि किसी प्रकार की त्रुटियाँ भी हों तो वे लेखक की नहीं सम्पादक की समझनी चाहिए। त्रुटियों का होना असम्भव नहीं क्योंकि मानव त्रुटियों का केन्द्र है। फिर भी मुझे विश्वास है। कि—

'करकृतमपराधं क्षन्तुमर्हन्तिसन्त':

प्रयाग
गंगा दशहरा
२००४ वि०

विनीत—

रामभरोस मालवीय

भूमिका

इस लेख-माला का आरंभ स्वर्गीय पण्डित कृष्णकान्तजी मालवीय के सन् १९१९ में लिखे गये लेखों से होता है और मैंने पण्डितजी को सर्वप्रथम १९१९ में ही देखा था। उस वर्ष मैं कानपुर में क्राइस्ट चर्च कालेज में पढ़ता था और पण्डितजी ने एक सार्वजनिक सभा में भाषण दिया था। कई और नेताओं के भाषण हुए थे। सभा समाप्त होने पर हम विद्यार्थीगण भाषणों की आलोचना करते हुए पार्क के बाहर निकले। एक बात पर हम सबका एकमत था—"पण्डितजी का भाषण सबसे अधिक विचारपूर्ण था।"

आज प्रकाशक महोदय के आग्रह से भूमिका लिखने के लिए जब मैंने संपूर्ण लेख-माला पढ़ी तो पुरानी बात याद आ गई। स्वर्गीय पण्डितजी का प्रत्येक लेख विचार-पूर्ण है। नैपोलियन से लेकर हिटलर तक के योरप के इतिहास का इनमें राजनैतिक निचोड़ है। और यह निचोड़ हमारे बड़े काम का है, क्योंकि जैसा पाठक देखेंगे, योरपीय इतिहास में केवल पात्रों के नाम बदलते हैं, नाटक वही का वही रहता है। जो पिट ने किया वही लायड जार्ज ने, जो लायड जार्ज ने वही चर्चिल ने और जो चर्चिल ने किया वही आज बेविन कर रहे हैं। जो हाल "पवित्र संघ" का हुआ वही "राष्ट्र संघ" का और जो "राष्ट्र संघ" का हुआ वही आज "यूनो" (संयुक्त राष्ट्र संगठन) का होता दिख रहा है। पण्डितजी के लेख कल के लिखे हुए अवश्य हैं, परन्तु उनमें आगामी कल के लिए संकेत है। इस ग्रन्थ के पृष्ठ १७ पर ये वाक्य हैं:—"१८७७ से रूस

कुस्तुन्तुनियाँ पर कब्जा चाहता था।......पीटर दी ग्रेट ने अपने वंशजों के लिए अपने बिल में ही लिख दिया था कि टर्की के प्रदेशों पर बिना कब्जा किये रूस की वृद्धि नहीं"। पीटर दी ग्रेट की कब्र में हड्डियाँ भी सड़-गल गयीं, जारशाही भी समूल नष्ट हो गयी और रूस में कहा जाता है एक नया युग चल रहा है, परंतु परंपरागत रूसी राजनीति ज्यों की त्यों है। स्टालिन की नज़र आज भी टर्की पर है और अशंका की जा रही है कि आगामी युद्ध इसी प्रश्न को लेकर प्रारंभ होगा।

पण्डितजी सच्चे विचारक थे और सच्चे विचारक सदा अपने तथा संसार दोनों के प्रति सच्चे रहते हैं। १६२० में भारतीय राजनीति में जब गांधी की आँधी आयी तब अधिकांश कांग्रेसी नेता कांग्रेस से अलग हो गये। इस घटना का उल्लेख करते हुए पण्डितजी ने "तूफ़ान में कांग्रेस" शीर्षक अपने लेख में लिखा था—"जो कुछ फैसला (कलकत्ता कांग्रेस में) हुआ वह देश के लिए हानिकर है और वह उचित न था, यह हमारी राय है। यदि सिद्धान्त से नहीं, तो हमारी राष्ट्रीय नौका के कर्णधारों को अलग करने का कारण ही वह हानिकर हो सकता है। किन्तु इसके साथ ही हमारा मत यह भी है कि हम लोग मनुष्य हैं और हमारा दृष्टि-पथ परिमित है। ऐसी दशा में यह असंभव नहीं कि जो हमारे संकुचित दृष्टि-पथ से हानिकर दिखायी देता हो, वही शुभ फल का देने वाला हो।"

उपर्युक्त वाक्य पण्डितजी की सचाई ही नहीं, सुसंस्कृत होने के भी प्रमाण हैं। केवल सुसंस्कृत व्यक्ति ही अपने दृष्टिकोण पर आस्था रखते हुए दूसरे के दृष्टिकोण के सत्य सिद्धि होने की संभावना को स्वीकार कर सकता है। इसी सिलसिले में पण्डितजी ने यह भी लिखा था—"हमको देश के सुन्दर भविष्य में विश्वास है। हमारा विश्वास है कि जो कुछ हो रहा है वह अच्छा हो या बुरा, कुछ काल के अनन्तर वह शुभ फल का देने वाला ही सिद्ध होगा। हमारा यह भी

विश्वास है कि भारत के स्वर्ण-दिवस का उदय शीघ्र ही होने वाला है।"

पण्डितजी ने जिस स्वर्ण-दिवस को अपने ज्ञान-नेत्रों से देखा था वह आज हमारे चर्म-चक्षुओं के सामने उदित हो रहा है। दुःख है कि वे आज हमारे बीच में नहीं हैं, परन्तु उनके उपदेश आज भी हमारे साथ हैं और पथ-प्रदर्शन का काम कर रहे हैं।

सेमिनेरी हिल
नागपुर
१५-५-४७

द्वारकाप्रसाद मिश्र

बहुमूल्य सम्मतियाँ और समालोचनाएँ

१६०७-०८ में जब मैं प्रयाग विश्वविद्यालय में पढ़ता था। पण्डितजी से हमारा पहला परिचय हुआ। उस समय वे उसी विद्यालय के विद्यार्थी थे परन्तु भिन्न कक्षा में। इसके बाद हम लोग एक बार अनायास मिले। यह भेंट उनके उस दौरे के समय हुई जब वे मंडला से खड़े किये गये कांग्रेसी उम्मेदवार के लिये प्रचारार्थ वहाँ जा रहे थे। मैं भी उनका साथी था।

इतने थोड़े परिचय के बाद किसी प्रख्यात व्यक्ति के विषय में कुछ लिख बैठना एक तरह की ढिठाई है। परन्तु प्रश्न है रामभरोस जी के आग्रह और मेरी ढिठाई के बीच। मुझे आग्रह की प्रेरणा कहीं अधिक बलवती लग रही है। इससे संकोच को परे रख कर यह लिख रहा हूँ।

प्रयाग में मैं मेकडानल्ड हिन्दू बोर्डिंग हाउस में रहा करता था। वहाँ कृष्णकांतजी का आना-जाना था। मेरे एक साथी अखाड़ची थे। उन्हें पंजा लड़ाने का शौक था। विपक्षी की धाक की बरदाश्त कृष्णकांतजी के स्वभाव के बाहर की बात थी। यद्यपि विपक्षी उनसे तगड़ा था। तब भी वे पंजा लड़ाने से आगा पीछा न करते थे। उनके स्वभाव की यह विशेषता उनके भावी जीवन के हर पहलू में मुझे सदा दिखाई दी। उनकी यह निर्भीकता उनके लेखों में जहाँ-तहाँ दिखाई देती है। राजनीतिक क्षेत्र में उसका उन्होंने बारबार परिचय दिया है। जब मैं उन्हें पंजा लड़ाते देखता था तब मुझे यह स्वप्न भी न था कि उनकी हड़ीली उँगलियों के भीतर लेखनी पर काबू पा लेने की विलक्षण

शक्ति भी छिपी हुई है। यह पता तो मैंने तब पाया जब कुछ वर्षों के बाद मैंने 'अभ्युदय' पढ़ना आरम्भ किया। अग्रलेखों की ठोस कठोरता से मुझे उन उँगलियों की दृढ़ता की याद आ जाती थी। जिनमें विपक्षी के दाँत खट्टे करने की क्षमता थी। उन उँगलियों में केवल कठोरता ही नहीं वरन् कलाकार का लचीलापन भी था। इतना ही नहीं, उनमें एक विलक्षण चितेरे की करामात भी थी। इस सबके पीछे बसने वाले मस्तिष्क में अनोखी सूझ थी जिसका पूरा-पूरा परिचय इस संग्रह से मिलता है।

नागपुर सी० पी० मई, १९४७ दुर्गाशंकर मेहता

विश्व का राजनैतिक भविष्य आज देख गया। कृष्णकान्त जी के लेखों का यह संग्रह अच्छा है यह कहना तो निरर्थक है। अच्छा होना तो स्वाभाविक है। विशेष बात तो यह है कि यह लेख केवल ऐतिहासिक या साहित्यिक महत्व नहीं रखते वरन् इनमें आज भी हमारे लिए पर्याप्त विचार-सामग्री है। राजनीति के विद्यार्थी को इन्हें पढ़ने से लाभ होगा। आपने इसे प्रकाशित करके उपयोगी काम किया है।

सम्पूर्णानन्द

१३ मई १९४७
नैनीताल

विश्व का राजनैतिक भविष्य की छपी प्रति मिली। मुझे प्रसन्नता है, कि स्वर्गीय भाई कृष्णजी, के तेजस्वी लेखों का संग्रह प्रकाशित करने का आयोजन आपने किया। आशा है कि नई पीढ़ी भाई कृष्णकान्तजी की तेजस्विता से परिचित होकर बहुत कुछ पावेगी।

—माखनलाल चतुर्वेदी

कर्मवीर, खंडवा, सी० पी०
१६-५-४७

जिस "संसार-संकट लेखमाला के साथ दो चार दूसरे लेखों को मिलाकर विश्व का राजनैतिक भविष्य" पाठकों के समक्ष पुस्तक के रूप में जाने वाला है उसे मैंने गौर से पढ़ा। समूची पुस्तक एक लम्बी मुद्दत की विश्वव्यापी राजनीति का तर्क-युक्त पूर्ण विशद विश्लेषण है। दरअसल स्वर्गीय पण्डित कृष्णकान्त जी मालवीय के इन लेखों से साफ झलकता है कि वह राजनीति का अध्ययन एवं अन्तर्राष्ट्रीय घटनाचक्रों का विश्लेषण तह में पैठकर करते थे, फलतः निष्कर्ष निकालने में कमाल करते थे, यह बात यह लेखमाला पुकार-पुकार कर कह रही है। विश्व की राजनीति पर जिनकी गृध्र-दृष्टि हो, जो उसका अनुगमन तथा अध्ययन बुद्धिपूर्वक करते हों, इस मामले में जिनकी दृष्टि काफी पैनी एवं अन्तर्गामिनी हो, जिन्होंने इतिहास का मन्थन मनोयोग-पूर्वक अपनी प्रखर प्रतिभा से किया हो और जिन्हें इस विषय में पूरा चस्का हो, पूरी लगन हो वही उन राजनीतिक भविष्य-वाणियों को कर सकते हैं जो इस लेखमाला में पाई जाती हैं। द्वितीय महायुद्ध से ठीक बीस साल पूर्व इसके बारे में मनीषी लेखक ने भविष्यवाणी की थी जो सही निकली। घटनाचक्रों के आधार पर उनने जो परिणाम बहुत पहले निकाले थे वे तुले तुलाये साबित हुए। यों ब्योरे की बातों में एकाध फर्क हो यह बात जुदी है। उन्होंने तो खुद कबूल किया है कि वैसी भविष्यवाणी तो ब्रह्मा भी नहीं कर सकते। इसलिये सुदूर भविष्य को भेदन करके उनकी दृष्टि ने पहले से ही जो घटना-चक्र को देख लिया है वह बेशक कमाल की चीज है और किसी भी निष्पक्ष पाठक को उस पर मुग्ध हो जाना पड़ता है।

हम भारतीयों का क्या कर्त्तव्य है जिससे हम आज़ाद हो जायँ यह बात उनने पग-पग पर बताई है। मंत्रिपद ग्रहण एवं

हिंसा अहिंसा के मुतालिक उनके चुभते उद्गार अपने ढंग के हैं। १९३७ से १९४२ तक के जमाने के बारे में उनकी वाणी लासानी है। सचमुच इस दर्म्यान संसार का चक्का बार-बार घूमा है और भीषण उलट-फेर हुए हैं। इसी का नाम है अन्तः दृष्टि और मेधावी लेखक ने इसे ही प्राप्त किया था।

बिहटा, पटना —स्वामी सहजानन्द सरस्वती

उन दिनों मैं 'अभ्युदय' में पत्रकारिता का अ, आ, इ, ई पढ़ रहा था, जब सन् १९१९ में श्रद्धेय पण्डित कृष्णकान्त जी मालवीय ने अपने स्वनामधन्य पत्र में 'संसार-संकट' शीर्षक-लेख-माला लिखनी शुरू की थी, जो प्रस्तुत पुस्तक में पिरो कर रखी गयी है। उस समय अपने परिमित ज्ञान के कारण मुझे आश्चर्य होता था, कि प्रथम महायुद्ध अभी ही समाप्त हुआ है, यूरूप की रक्त-रंजित भूमि अभी सूखने भी नहीं पायी है, कुछ ही महीने पहले समाप्त हुए यूरोपीय महाभारत के तोपों की गड़गड़ाहट अभी तक कानों में प्रतिध्वनित हो रही है, ऐसी दशा में 'संसार-संकट' के कथनानुसार कैसे दूसरा विश्व-युद्ध सम्भव है, किन्तु बाद के विश्व-रंगमंच के पटाक्षेपों और घटना-क्रमों को देखने पर वही आश्चर्य विश्व-राजनीति के सूक्ष्म-द्रष्टा पं० कृष्णकान्त जी के अन्तर्राष्ट्रीय ज्ञान पर होने लगा कि जो बातें श्रद्धेय पण्डित जी वर्षों पहिले कह चुके हैं, वे अब अक्षरशः सत्य होती दिखाई दे रही हैं। द्वितीय विश्व-युद्ध आरम्भ होने के पहिले संसार के राष्ट्रों की जिस प्रकार गुट-बन्दियां होने लगी थीं, वे कितना ठीक चरितार्थ हो रही हैं। अब द्वितीय विश्व-महायुद्ध समाप्त होने के बाद संसार की चार महाशक्तियों द्वारा संसार की स्थायी शान्ति की वर्तमान नाटक-रचनाओं के बावजूद जो द्वितीय विश्व-महाभारत का बीजारोपण हो रहा है। उससे द्वितीय विश्व-युद्ध होने से भी पहिले पं० कृष्णकान्त जी द्वारा किया गया कथन कितना

सत्य प्रकाशित होता दिखायी देता है कि—इसी शताब्दि के अन्दर एक नहीं, दो नहीं, तीन विश्व-युद्ध होंगे।'

निस्सन्देह श्रद्धेय पं० कृष्णकान्त जी मालवीय (जिन्हें अब 'स्वर्गीय' कहते हुए अत्यन्त पीड़ा होती है) हिन्दी के सम्पादकों में सर्वाग्रणी थे। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का जितना ऊँचा ज्ञान आपको था, उतना उनके समकालीन किसी अन्य सम्पादक में नहीं दिखाई देता था, जो इस पुस्तक से सर्वथा सिद्ध है। 'अभ्युदय' को युक्तप्रान्त के इस शताब्दी के हिन्दी पत्रों में सबसे प्राचीन और अग्रणी होने के नाते जिस प्रकार युक्तप्रान्त ही नहीं देश के समस्त हिन्दी-भाषी प्रान्तों में राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने का श्रेय प्राप्त है, उससे भी अधिक हिन्दी वालों में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का भी ज्ञान उत्पन्न करने के यश के अधिकारी पं० कृष्णकान्त जी थे।

अन्तर्राष्ट्रीय भविष्यवाणियों से युक्त उन लेखों को पुस्तकाकार प्रकाशित कर पं० रामभरोस मालवीय ने हिन्दी पत्रकारिता का मस्तक ऊँचा किया है और इस पुस्तक की एक 'ऐडवान्स' प्रति मेरे पास सम्मत्यर्थ भेज कर मुझे स्वर्गीय पंडित कृष्णकान्त जी के प्रति अपनी श्रद्धांलि अर्पित करने का एक और अवसर दिया है, उसके लिए मैं पं० रामभरोस जी का कृतज्ञ हूँ।

भारत कार्यालय —रामकिशोर मालवीय

बीसवीं सदी में विश्व के लिए भारत की बहुमूल्य देन "विश्व का राजनैतिक भविष्य" है, जिसके द्वारा 'जन-जागरण-सन्देश' की परम्परा का निर्वाह हुआ है।

इसमें सन्देह नहीं यह बहुमूल्य ग्रन्थ पुण्यश्लोक लेखक का वाङ्मय शरीर है। पुस्तक की प्रत्येक पंक्ति में मनस्वी लेखक का व्यक्तित्व हुंकार रहा है।

आद्योपान्त पुस्तक पढ़ लेने पर ऐसा प्रतीत होता है, कि उस महामहिम लेखक में आचार्य कौटिल्य-सा आचार्यत्व, ऋषि उदययन-सा पवित्र गर्वीला ब्राह्मणत्व, तपस्वी भीष्म-सी विचार-दृढ़ता और द्रोण-सा रण-कौशल निहित था।

ध्येय, धर्म, सिद्धान्त के साथ ही क़लम के धनी स्वर्गीय श्रद्धेय पं० कृष्णकान्त जी मालवीय की यह अमर कृति राष्ट्र की अक्षय साहित्यिक निधि है।

अभ्युदय कार्यालय
प्रयाग

—देवदत्त शास्त्री
(सम्पादक, अभ्युदय)
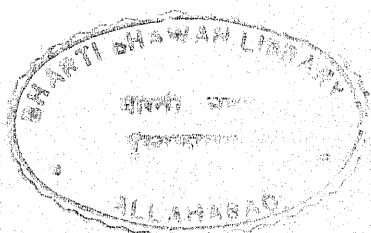
रामभरोस मालवीय

जिन्हें युग-पुरुष का निश्छल प्यार मिला

समर्पण !

राष्ट्र-निर्माता,

मेरे सर्वस्व !

स्व० श्रद्धेय पण्डित कृष्णाकान्त

मालवीय जी !

त्वदीयं वस्तु हे श्रीमन् !

तुभ्यमेव समर्पये ।

चेतावनी !

भावी महायुद्ध जल या थल में न लड़ा जाकर हवा में लड़ा जायगा। संसार वीरों की भोग-भूमि है। और अब वही देश और जाति जीवित रह सकती है, जिसका वायु पर काफ़ी अधिकार हो। ग्लाइडिङ्ग हवा पर अधिकार पाने का एक बहुत बड़ा ज़रिया है इसलिए देशवासियों को ग्लाइडिङ्ग को अपनाना चाहिए।

सन् १९३९

—पं० कृष्णकांत मालवीय
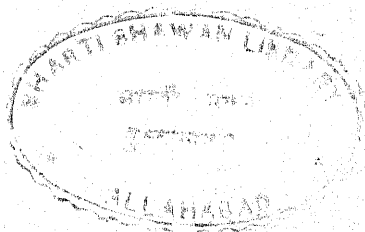
युग-पुरुष
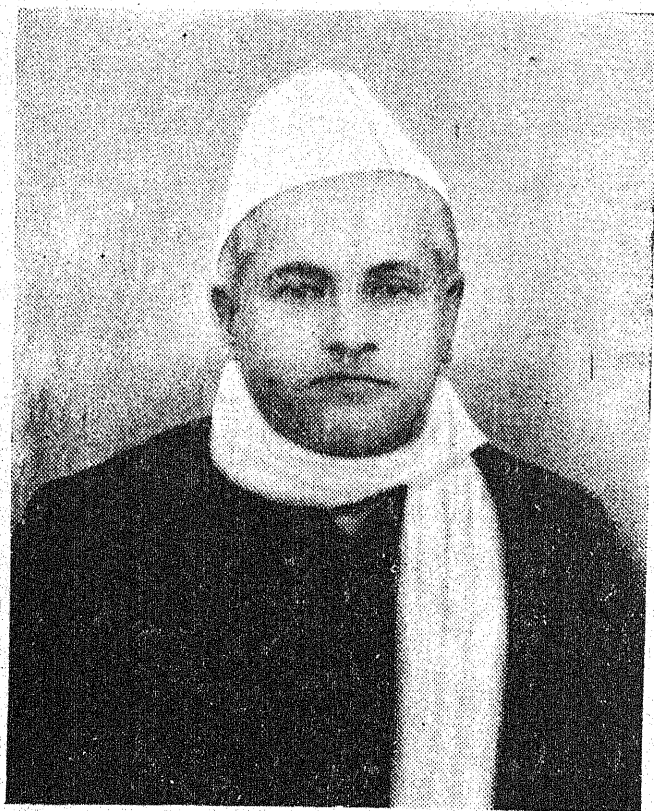
जिनकी ललकारों की प्रतिध्वनि से अब भी दिल्ली थर्राती है ।
जिनकी विद्वत्ता घर-घर, अब भी धूम मचाती है ॥
जो भूत, भविष्यत्, वर्तमान के ज्ञाता, त्राता भारत के ।
वे अमर हुतात्मा महामान्य मालवीय कृष्णाकान्त थे ॥

—'विरक्त'
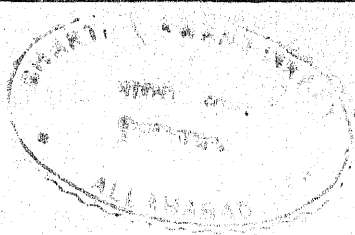
विश्व का राजनैतिक भविष्य

[सन् १९१९ में विश्व के सभी राष्ट्रों के आपसी बर्ताव ३ और ६ की भाँति हो रहे थे। ग्रेट-ब्रिटेन की स्थिति 'फूट डालो राज्य करो' की नीति पर अवलम्बित थी। विश्व की राजनीति स्वार्थ और लिप्सा के दल-दल में फँसी हुई थी। उस समय पंडित जी ने विश्व के घटनाचक्रों और इतिहास का गम्भीर मनन करके यही निष्कर्ष निकाला था कि "विश्व का भविष्य सङ्कटमय है। शान्ति सुरक्षित नहीं रह सकती—द्वितीय महाभारत होकर ही रहेगा। भारत सावधान रहे !"

२८ वर्ष पूर्व की गयी राजनैतिक भविष्यवाणी आज आपके सामने साकार खड़ी है। 'संसार-सङ्कट' शीर्षक निबन्ध आपको विश्व-राजनीति का इतिहास और उसका भविष्य बतायेगा। —सम्पादक]

संसार-सङ्कट

महाभारत होगा इसमें सन्देह नहीं। एक नहीं दो नहीं इस शताब्दि में कम से कम तीन बार संसार में भीषण विकराल महाभारत होने की सम्भावना है। भारत इन सबों में उत्कृष्ट भाग लेगा। अन्तिम महाभारत कलियुग में सतयुग के स्थापन के निमित्त, होगा। निश्चित रूप से भविष्य में क्या होगा यह ब्रह्मा के सिवाय और कोई नहीं कह सकता। किन्तु संसार में जो कुछ हो रहा है, जो कुछ होता दिखाई दे रहा है, इससे उपर्युक्त बातों को संभावना कुछ प्रतीत होती है।

आगामी महाभारत

की नींव अभी से पड़ना शुरू हो गई है। अभी इस महाभारत का रक्त भी रणक्षेत्र में नहीं सूख पाया है कि तैयारियाँ ऐसी हो रही हैं, घटनाएँ ऐसी घटित हो रही हैं, राजनीतिज्ञों का दिमाग ऐसा फिर गया है जिससे यह साफ-साफ दिखाई देता है कि दूसरे महाभारत का बीज बोया जा रहा है। उसका शीघ्र फलना-फूलना आब-हवा और जमीन पर, याने राष्ट्रों की स्थिति और उनमें रहनेवाली प्रजा की शीघ्र शक्तिमान होने की प्रकृति पर निर्भर है। इस बीजवपन की क्रिया को भले प्रकार समझने के लिए यह आवश्यक है कि आप संसार के राष्ट्रों की वर्तमान स्थिति पर एक बार विचार करें। प्रत्येक राष्ट्र की आप मेरे साथ-साथ सैर करें और देखें कि यहाँ क्या हो रहा है? यहाँ पर मेरा इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि

यूरुप की भावी शान्ति

के लिए सन्धि का विजय के नहीं वरन् न्याय के स्तम्भ पर स्थापित होना आवश्यक था। राष्ट्र-संघ-संधि की मुख्य शर्तों के तय होने के पहले न कि बाद में संगठन उचित था, किन्तु यह सब कुछ हो नहीं रहा है। सन्धि द्वारा शांति की नहीं वरन् विजय की घोषणा ध्वनित हो रही है। और राष्ट्र-सङ्घ की चर्चा को एक कोने रख कर फ्रान्स के सचिव मि० क्लिमैन्सी पुराने

शिकार के कुत्ते

बल साम्य की पैरवी कर रहे हैं। राष्ट्र-संघ तथा भविष्य की शान्ति की सफलता के लिए सबसे प्रथम आवश्यकता यह थी कि राष्ट्रों के युद्ध का सामान अस्त्र-शस्त्र, गोला-बारूद सेना और नौ-सेना दिन-प्रतिदिन कम की जाय। राष्ट्र-संघ में सम्मिलित

आगामी महाभारत

की नींव अभी से पड़ना शुरू हो गई है। अभी इस महाभारत का रक्त भी रणक्षेत्र में नहीं सूख पाया है कि तैयारियाँ ऐसी हो रही हैं, घटनाएँ ऐसी घटित हो रही हैं, राजनीतिज्ञों का दिमाग ऐसा फिर गया है जिससे यह साफ-साफ दिखाई देता है कि दूसरे महाभारत का बीज बोया जा रहा है। उसका शीघ्र फलना-फूलना आब-हवा और जमीन पर, याने राष्ट्रों की स्थिति और उनमें रहनेवाली प्रजा की शीघ्र शक्तिमान होने की प्रकृति पर निर्भर है। इस बीजवपन की क्रिया को भले प्रकार समझने के लिए यह आवश्यक है कि आप संसार के राष्ट्रों की वर्तमान स्थिति पर एक बार विचार करें। प्रत्येक राष्ट्र की आप मेरे साथ-साथ सैर करें और देखें कि यहाँ क्या हो रहा है? यहाँ पर मेरा इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि

यूरप की भावी शान्ति

के लिए सन्धि का विजय के नहीं वरन् न्याय के स्तम्भ पर स्थापित होना आवश्यक था। राष्ट्र-संघ-संधि की मुख्य शर्तों के तय होने के पहले न कि बाद में संगठन उचित था, किन्तु यह सब कुछ हो नहीं रहा है। सन्धि द्वारा शांति की नहीं वरन् विजय की घोषणा ध्वनित हो रही है। और राष्ट्र-सङ्घ की चर्चा को एक कोने रख कर फ्रान्स के सचिव मि० क्लिमैन्सी पुराने

शिकार के कुत्ते

बल साम्य की पैरवी कर रहे हैं। राष्ट्र-संघ तथा भविष्य की शान्ति की सफलता के लिए सबसे प्रथम आवश्यकता यह थी कि राष्ट्रों के युद्ध का सामान अस्त्र-शस्त्र, गोला-बारूद सेना और नौ-सेना दिन-प्रतिदिन कम की जाय। राष्ट्र-संघ में सम्मिलित

होने वाले राष्ट्रों के लिए पहिली बार मुख्य शर्त भी यही है कि वह सैनिकों की संख्या कम करें और युद्ध का सामान घटावे। किंतु अभी यह खबर आई है कि अमेरिका जोरों से अपनी सेना बढ़ाने में दत्तचित है। दो तीन वर्ष के भीतर ही बड़ी शक्तिशाली नौ-सेना अमेरिका तैयार कर लेना चाहता है। नौ-सेना कमेटी के सदस्यों को मि० डैनियल ने सूचित किया है कि अमेरिका के नौ-सेना के बड़े-बड़े जहाज भविष्य में विद्युत द्वारा चलेंगे। उन्होंने कहा है कि "न्यू मैक्सिको" जो अभी तैयार हुआ है, संसार में विद्युत द्वारा चलनेवाला पहिला और संसार का सर्वोत्तम युद्ध-पोत है। इसमें ३१००० घोड़ों की शक्ति है और जलमग्न चारों तरफ से वार करने पर कठिनाई से इसे नष्ट कर सकेंगे कानों में यह खबर भले प्रकार गूँज ही नहीं पाई थी कि "हुड" नाम का युद्ध-पोत शीघ्र ही तैयार हो जायगा। यह ८८४ फीट लम्बा होगा और अपने वक्ष:स्थल पर आठ, पन्द्रह इञ्चवाली तोपों को धारण करेगा। इसका वहिर्भाग ऐसा बनाया जा रहा है कि जलमग्न इससे व्यर्थ ही मुठभेड़ किया करेंगे। ऐसे ही तीन युद्ध-पोत और तैयार हो रहे हैं। संसार की भावी भलाई के लिए यह तैयारियाँ हो रही हैं और इस प्रकार से वे राष्ट्र जो शान्ति और संधि के चीत्कार से संसार को हिलाये दे रहे हैं, कुछ समय के लिए इन बातों से ध्यान हटाकर

ग्रेट ब्रिटेन को देखिये !

इंगलैण्ड में क्या हो रहा है। शांति के कौन-कौन से सामान वह एकत्र कर रहा है? इङ्गलैण्ड से आपका घनिष्ठ सम्बन्ध था राजनीति की माप का परिचय भी अधिक है और इसलिए अन्य राष्ट्रों की अपेक्षा इस सम्बन्ध में पहिले विचार करना होगा। आप जानते हैं कि मंत्रि-मण्डल का

आगामी महाभारत

की नींव अभी से पड़ना शुरू हो गई है। अभी इस महाभारत का रक्त भी रणक्षेत्र में नहीं सूख पाया है कि तैयारियाँ ऐसी हो रही हैं, घटनाएँ ऐसी घटित हो रही हैं, राजनीतिज्ञों का दिमाग ऐसा फिर गया है जिससे यह साफ-साफ दिखाई देता है कि दूसरे महाभारत का बीज बोया जा रहा है। उसका शीघ्र फलना-फूलना आब-हवा और जमीन पर, याने राष्ट्रों की स्थिति और उनमें रहनेवाली प्रजा की शीघ्र शक्तिमान होने की प्रकृति पर निर्भर है। इस बीजवपन की क्रिया को भले प्रकार समझने के लिए यह आवश्यक है कि आप संसार के राष्ट्रों की वर्तमान स्थिति पर एक बार विचार करें। प्रत्येक राष्ट्र की आप मेरे साथ-साथ सैर करें और देखें कि यहाँ क्या हो रहा है ? यहाँ पर मेरा इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि

यूरुप की भावी शान्ति

के लिए सन्धि का विजय के नहीं वरन् न्याय के स्तम्भ पर स्थापित होना आवश्यक था। राष्ट्र-संघ-संधि की मुख्य शर्तों के तय होने के पहले न कि बाद में संगठन उचित था, किन्तु यह सब कुछ हो नहीं रहा है। सन्धि द्वारा शांति की नहीं वरन् विजय की घोषणा ध्वनित हो रही है। और राष्ट्र-सङ्घ की चर्चा को एक कोने रख कर फ्रान्स के सचिव मि० क्लिमैन्सी पुराने

शिकार के कुत्ते

बल साम्य की पैरवी कर रहे हैं। राष्ट्र-संघ तथा भविष्य की शान्ति की सफलता के लिए सबसे प्रथम आवश्यकता यह थी कि राष्ट्रों के युद्ध का सामान अस्त्र-शस्त्र, गोला-बारूद सेना और नौ-सेना दिन-प्रतिदिन कम की जाय। राष्ट्र-संघ में सम्मिलित

होने वाले राष्ट्रों के लिए पहिली बार मुख्य शर्त भी यही है कि वह सैनिकों की संख्या कम करें और युद्ध का सामान घटावे। किंतु अभी यह खबर आई है कि अमेरिका जोरों से अपनी सेना बढ़ाने में दत्तचित है। दो तीन वर्ष के भीतर ही बड़ी शक्तिशाली नौ-सेना अमेरिका तैयार कर लेना चाहता है। नौ-सेना कमेटी के सदस्यों को मि० डैनियल ने सूचित किया है कि अमेरिका के नौ-सेना के बड़े-बड़े जहाज भविष्य में विद्युत द्वारा चलेंगे। उन्होंने कहा है कि "न्यू मैक्सिको" जो अभी तैयार हुआ है, संसार में विद्युत द्वारा चलनेवाला पहिला और संसार का सर्वोत्तम युद्ध-पोत है। इसमें ३१००० घोड़ों की शक्ति है और जलमग्न चारों तरफ से वार करने पर कठिनाई से इसे नष्ट कर सकेंगे कानों में यह खबर भले प्रकार गूँज ही नहीं पाई थी कि "हुड" नाम का युद्ध-पोत शीघ्र ही तैयार हो जायगा। यह ८८४ फीट लम्बा होगा और अपने वक्षःस्थल पर आठ, पन्द्रह इञ्चवाली तोपों को धारण करेगा। इसका वहिर्भाग ऐसा बनाया जा रहा है कि जलमग्न इससे व्यर्थ ही मुठभेड़ किया करेंगे। ऐसे ही तीन युद्ध-पोत और तैयार हो रहे हैं। संसार की भावी भलाई के लिए यह तैयारियाँ हो रही हैं और इस प्रकार से वे राष्ट्र जो शान्ति और संधि के चीत्कार से संसार को हिलाये दे रहे हैं, कुछ समय के लिए इन बातों से ध्यान हटाकर

ग्रेट ब्रिटेन को देखिये!

इंगलैण्ड में क्या हो रहा है। शांति के कौन-कौन से सामान वह एकत्र कर रहा है? इङ्गलैण्ड से आपका घनिष्ठ सम्बन्ध था राजनीति की माप का परिचय भी अधिक है और इसलिए अन्य राष्ट्रों की अपेक्षा इस सम्बन्ध में पहिले विचार करना होगा। आप जानते हैं कि मंत्रि-मण्डल का

चुनाव हो गया है। वह कैसा हुआ है यह भी आपसे छिपा नहीं किन्तु कदाचित् आपको यह मालूम न होगा कि सिवाय मि० लायड जार्ज के इस समय में चुनाव का होना किसी को पसन्द न था। उदार, अनुदार, मजदूर, स्वतंत्र सभी दल के मनुष्य इस समय में चुनाव के विरुद्ध थे। किन्तु यह हुआ, क्योंकि मि० लायड जार्ज यह जानते थे कि इसी समय चुनाव होने से उनकी जीत हो सकती थी। विजयश्री उनके समय में प्राप्त हुई थी। विजय का श्रेय उनको मिल रहा था। विजय का मद उतरते ही स्वाभाविक जीवन में जनता अधिक विवेक से काम करेगी और उस समय में मि० हेन्डरसन, जार्ज लैन्सबरी आदि का शक्ति न प्राप्त कर लेना असंभव हो जायगा। चुनाव हो गया किन्तु सदस्यों का सन्धि परिषद् में अधिक प्रभाव पड़ेगा। सन्धि परिषद् की प्रारम्भिक बैठक आरम्भ हो गई है और कामन्स सभा की बैठक नहीं प्रारम्भ हुई। मंत्रणाएँ गुप्त गुहा हो गईं। कूटनीति के बन्द द्वार के पीछे गुप-चुप सलाहें भी हो गईं।

कूटनीति का बन्द द्वार

संसार की भलाई के लिए अच्छा नहीं। संसार-परराष्ट्री विभाग (फारेन-आफिसेज) की गुह्य चालों का बहुत दिनों से भीषण विरोधी था। इंगलैण्ड में और फ्रांस में बेघाट के समय से इस मसले पर विचार होना आरम्भ हो गया था कि परराष्ट्र विभाग की कोई कार्यवाही गुह्य रीति से न हो, गुप्त सन्धि न की जाय और फारन आफिस जनता की दृष्टि के पहुँचने के लिए चारों ओर से खुला हो। इंगलैण्ड में युद्ध के छिड़ते ही यही पुकार उठी थी। कितने ही लोग युद्ध का कलंक सर एडवर्ड ग्रे की कूटनीति और परराष्ट्र-विभाग की विकृत चालों के माथे मढ़ते थे। वह साफ-साफ स्वीकार कर लिया गया था कि भविष्य में परराष्ट्र-विभाग कोई कार्यवाही गुप्त रीति से न करेगा और संसार के राज-

नीतिज्ञों के मत में भविष्य की भलाई के लिए वह कार्य के लिए आवश्यक समझा गया था, किन्तु हुआ वही जो नहीं होना चाहिए।

शान्ति की पहेलिका

सन्धि परिषद् की आरम्भिक अधिवेशनों में हल हो रही है और कामन्स सभा का इसमें हाथ नहीं। मजदूर दल और उदारदल तथा प्रजा के विचारशील मनुष्यों से यह सब छिपा नहीं और यह सब समझ लेना कि वे सब सहज में इन बातों को समझ लेंगे "टुक-टुक देदम दम नाकशीदम" की कहावत को चरितार्थ करेंगे। मूर्खता से कुछ कम नहीं है कि वे सलाह लें या नहीं। किन्तु चुनाव ने ही जो कुछ सिखा दिया है वही दिल को काफी तरह से हिला देने वाला है।

आयर्लैण्ड की समस्या

ने विकराल रूप धारण कर लिया है। आयर्लैंड में राष्ट्रीय दल का जो इंगलैण्ड के साथ रह कर स्वतंत्रता प्राप्त करना चाहता था, पता नहीं है। सिन-फिन दल की लहरों के सामने वह बह गया और उसके शक्ति संबल होने की वही सिन-फिन दल के सदस्य जो चुने गये हैं पार्लियामेंट में बैठना नहीं चाहते और डबलिन में एक शासन सभा स्थापित कर वे आयर्लैण्ड की स्वतंत्रता की घोषणा करना चाहते हैं। इंगलैण्ड की राजनीतिज्ञों और विशेष कर मि० लायड जार्ज की चालों का फल यह हुआ है। आयर्लैण्ड सब कुछ कर चुका है। नियमानुमोदित आन्दोलन, मार-काट, उपद्रव, बलवा, आयर्लैण्ड ने कोई बात उठा नहीं रक्खी। युद्ध के पहिले उसे

स्वराज्य का वचन

भी दे दिया गया था। किन्तु कोरी बातों के सिवा कुछ किया नहीं

गया। पिछले अप्रैल मास में मि० लायड जार्ज ने कहा था कि आयर्लैंण्ड में शीघ्र ही बिना अधिक विलम्ब के स्वराज्य का स्थापन होगा। आठ महीने बाद नवम्बर में गङ्गा-यमुनी मन्त्रि-मण्डल की नीति निर्धारित करते हुए आपने लिखा है कि वे अल्स्टर को विवश नहीं करेंगे। उसे उसकी इच्छा के विरुद्ध कार्य न करना पड़ेगा। आपसे छिपा नहीं कि अल्स्टर विरोधी है, वह नहीं चाहता कि आयर्लैंण्ड को स्वराज्य प्राप्त हो मि० लायड जार्ज के आयर्लैंण्ड से तनिक भी आशा नहीं है। इसका इंगलैण्ड में भी विश्वास कम हो गया है और सिनफिन दल के सदस्यों को चुनकर जो शीघ्र ही आयर्लैंण्ड की स्वतन्त्रता की घोषणा करना चाहते हैं, उसने इसी बात की सूचना दी है। युद्ध के पहिले आपस के युद्ध Civil War की आशंका ने अब नूतन रूप में फिर जन्म ले लिया है। सिनफिन क्रान्तिकारियों की विजय हुई है वे झगड़े से डरते नहीं वरन् उसका आवाहन करते हैं। ग्रेट ब्रिटेन कभी भी शान्तिपूर्वक आयर्लैंण्ड में

प्रजातन्त्र का स्थापन

नहीं देख सकता। वह होमरूल कदाचित् दे भी देता। आयर्लैंण्ड में प्रजातंत्र का सङ्गठन इङ्गलैण्ड के लिए कल्याणकारी नहीं और वह भरसक इसे नहीं होने देगा। यह सच है कि इंगलैण्ड के हाथ में शक्ति है अभी उसकी सेना ने म्यान में तलवार भी नहीं रक्खी है किन्तु इसका

फल क्या होगा?

तीन चौथाई आयर्लैंण्ड प्रजातंत्रवादी है और वह अस्त्रों से काबू में नहीं रक्खा जा सकता। हमको विश्वास है कि इंगलैण्ड के राजनीतिज्ञ जो चतुरता और बुद्धिमत्ता में सर्वश्रेष्ठ सिद्ध हो रहे हैं, अवस्था को समझ कर काम करेंगे और आयर्लैंण्ड को संतुष्ट

रक्खेंगे। किन्तु वर्तमान स्थिति चिन्ताजनक है इसमें सन्देह नहीं। इंगलैण्ड सहसा स्वतन्त्रता के दान से कदाचित् इसलिए सहमत है क्योंकि उसको आयर्लैंड का विश्वास नहीं! दूसरे स्वतंत्र या परतंत्र आयर्लैंड की बयार इंगलैण्ड के लिए अच्छी नहीं। तीसरे स्वतंत्र प्रजातंत्र आयर्लैंड इंगलैण्ड के शत्रुओं के हाथ में सैनिक तथा नौ-सेना के आक्रमण की दृष्टि से भी एक विशेष गढ़ हो सकता है। इंगलैण्ड जानते हुए दुग्ध के साथ इस मक्खी को नहीं निगल सकता। इसीलिए वह जहाँ तक मालूम होता है, सब तरफ से उदार होते हुए भी उदारता को कार्यरूप में नहीं परिणत कर पाता है। राष्ट्रपति विलसन—मैं पहिले ही लेख में कह चुका हूँ कि पुराने राष्ट्रपति विलसन नहीं रहे और कम से कम इंगलैण्ड को उसकी इच्छा के विरुद्ध काम करने पर विवश करने की अब उनमें सामर्थ्य नहीं। यह सभी बातें विचारणीय हैं। इन बातों का अर्थ यह नहीं है कि इंगलैण्ड और आयर्लैंड में यह महाभारत होना चाहता है। अधिक से अधिक इन बातों की सम्भवना है कि उनका यह प्रभाव हो कि मंत्रि-मण्डल को इस्तीफा देना पड़े, किंतु सर सत्येन्द्र को सहकारी भारत सचिव बनानेवाले से हमको कुछ अधिक आशा है जैसा हमारा विश्वास है कि आयर्लैण्ड का हृदय वश में करने के लिए वह कोई बात उठा न रक्खेगा। उपर्युक्त बातों के लिखने से मेरा तात्पर्य यही है कि ग्रेट-ब्रिटेन कि वर्तमान स्थिति कैसी है राष्ट्र के प्रधान अंगों में मनमोटाव कैसा बढ़ रहा है और भविष्य की संसार की शांति पर इसका प्रभाव कैसा पड़ेगा? आप लोगों को भी इन बातों पर अच्छी तरह विचार करना चाहिए क्योंकि इंगलैण्ड और भारत के भविष्य का घना सम्बन्ध है। बाह्य दृष्टि इंगलैण्ड की यही है।

[अभ्युदय] [१८ जनवरी, सन् १६१६]

———

इतिहास की पुनरावृत्ति

[सन् १९१९ में यूरुप के साम्राज्यवादी राष्ट्र जो राजनैतिक शतरंज खेल रहे थे, 'राष्ट्र-संघ' के नाम पर जो साजिश की जा रही थी उनका गम्भीर अध्ययन करके पण्डित जी ने यूरुप के बहुरूपिया राजनीतिज्ञों का जो भण्डाफोड़ किया है उसमें इतिहास और घटनाचक्रों को साक्षी रखा है। पंडितजी ने स्पष्ट घोषणा की थी कि "सन्धि परिषद के अधिवेशन, युद्ध रोकने की योजनाएँ युद्ध काल में भी हुई थीं। इनसे बचाव के बजाय विनाश अवश्यम्भावी है।"

यह लेख यूरुप कीकूटनीति का इतिहास है। —सम्पादक]

"अगर फुर्सत मिली हो स्वार्थ की बातों को सुनने से,
धरम की बात भी सुन लीजिए सरकार थोड़ी सी।"

पिछले लेख में हमने आपसे राष्ट्रों की सैर करने की प्रार्थना की थी। हमने कहा था कि युद्ध का बीज बोया जा रहा है। आइये देखिये बीज कैसे और कहाँ वपन हो रहा है? इसके पहिले कि वर्तमान राष्ट्रों की आप देख-भाल करें हम यह चाहते हैं कि पुराने इतिहास पर भी आप एक नज़र डाल लें क्योंकि जैसा कि विद्वानों का मत है हमको दिखाई पड़ रहा है कि यूरुप का इतिहास अपने को दोहरा रहा है। आप इस समय देख रहे हैं कि पेरिस में सन्धि परिषद् के अधिवेशन हो रहे हैं, राष्ट्र-सङ्घ का निर्माण हो रहा है। राष्ट्र इस प्रयत्न में लीन है कि भविष्य में युद्ध रोका जाय और संसार से युद्ध का नामोनिशान मिट जाय। इतिहास के पन्नों को उलट कर देखने से ऐसी घटनाएँ युद्धकाल में भी होती हुई दिखाई देती हैं। उस समय

में संसार के रङ्गमञ्च पर

फ्रान्स का दौरदौरा था।

उस समय जर्मनी या कैसर का पता न था। लोग नेपोलियन और फ्रान्स का नाम लेकर सुबह और शाम उठते बैठते थे। यूरुप में फ्रान्स का झण्डा फहरा रहा था और नेपोलियन के नाम से राजाओं के मुकुट और सिंहासन हिल जाते थे। इंगलैण्ड, जर्मनी रूस और आस्ट्रिया को पैर बढ़ाने को संसार में ठौर नहीं मिलता था। उस समय फ्रान्स की वही दशा थी जो जर्मनी की १९१४ में थी। जिस तरह इस काल में जर्मन लोगों का यह ख्याल था कि "कैसर प्रशिया का प्रधान है, प्रशिया जर्मनी का, जर्मनी संसार का शिरोमुख है और इस दुनिया में कोई बात बिना जर्मनी और कैसर के हस्तक्षेप के तय नहीं होनी चाहिए' उसी तरह से नेपोलियन के समय में फ्रान्स निवासियों का यह ख्याल था कि फ्रान्स सरकार की किस्मत का विधाता नेपोलियन है। जिस तरह से बढ़ती हुई जर्मन जनता के निवास-स्थान की जर्मनी को चिन्ता थी उसी तरह उस समय फ्रान्स जनता को अपनी बढ़ती हुई फ्रान्स जनता के लिए उपनिवेशों की आवश्यकता थी। तात्पर्य यह कि फ्रान्स यूरुप का शिरोमुख था और नेपोलियन के इशारे से यूरुप के राष्ट्र चलते थे किन्तु—

फ्रान्स का पतन

हुआ, इंगलैण्ड जर्मनी रूस और आस्ट्रिया ने मिलकर फ्रान्स को कुचला। घटना इस प्रकार घटित हुई। नेपोलियन संसार का शासक होना चाहता था। यूरुप में जो ही सर उठाता था उसे वह कुचल देता था। इंगलैण्ड राजनीति में सदा से कुशल रहा है। प्रधान सचिव "पिट" ने रूस और आस्ट्रिया को अपनी ओर मिलाया। नेपोलियन से यह छिपा नहीं रह सका उसने

आस्ट्रिया पर वार

तुरन्त किया। आस्ट्रिया की प्रधान सेना को उसने कैद कर लिया और शीघ्र ही दिसम्बर १८०५ में उसने रूस और आस्ट्रिया को सम्मिलित सेना को परास्त किया। इससे "पिट" को बहुत व्यथा पहुँची और उनकी मृत्यु हो गई। इसके बाद हालैण्ड और नेपिलस के राज्यों पर अधिकार कर नेपोलियन ने जर्मनी पर चढ़ाई कर दी। कुछ सप्ताहों में ही जर्मन सेना नष्ट-भ्रष्ट हो गई। जर्मनी के प्रायः समस्त प्रधान क़िलों पर फ्रान्स का झण्डा फह-राने लगा। इसके बाद नेपोलियन ने रूसी सेना को सर किया।

इंगलैण्ड को धक्का

पहुँचाने को नेपोलियन ने बर्लिन (Berlin Decress) और मिलन (Milan Decress) की विज्ञप्तियों की घोषणा की। इनका अर्थ यह था कि यूरोप के राष्ट्र इंगलैण्ड से किसी प्रकार का व्यापारिक सम्बन्ध न रक्खें। (कुछ ऐसा ही इस समय मित्र राष्ट्रवाले जर्मनी के व्यापार के सम्बन्ध में करना चाहते हैं) पोर्तगाल के राष्ट्र ने इन विज्ञप्तियों की अवहेलना की। नेपोलियन ने उसे भी खासी शिक्षा दी, और अपने भाई को वहाँ का राजा बना दिया। नेपोलियन की शक्ति को बढ़ते देख यूरोप के राष्ट्र चमके (चौंके), फिर आपस में धीरे-धीरे सन्धि स्थापित हुई। इंगलैण्ड ने फ्रैन्च सेना से लड़ने के लिए स्पेन पर चढ़ाई कर दी! आस्ट्रिया दक्षिण-जर्मनी में फ्रान्स पर हमला करने को उठा और अप्रैल १८०९ से १४ तक युद्ध जारी रहा। एक ओर अंग्रेजी फौज वेलि-ङ्गटन के नेतृत्व में विजय प्राप्त कर रही थी, दूसरी ओर नेपो-लियन आस्ट्रिया को कुचल रहा था इसी समय

रूस क्षेत्र में आया।

रूस इंगलैण्ड से व्यापार जारी रखना चाहता था, वह नेपोलियन

को असह्य था। उसने रूस पर चढ़ाई कर दी। सेना चढ़ गई, किन्तु रूस की विस्तृत भूमि के बर्लिस्तान में वह करती क्या? भोजन वसन की सामग्री कहीं नहीं मिली और सेना को विवश हो, लौट आना पड़ा। नेपोलियन के

पतन का प्रथम चिन्ह

यह था। पहिली ही बार उसकी सेना अपने उद्देश्य में असफल हुई थी। इसी समय में उत्तरीय जर्मनी की फ्रेन्च प्रजा ने बगावत का झंडा उठाया। नेपोलियन को स्पेन से इधर बुलाहट पड़ी। वेलिंगटन को मौका मिला और उसने फ्रेन्च सेना को नीचा दिखाया। इसी समय पर जर्मन, आस्ट्रियन और रूसी सेना ने मिलकर आक्रमण किया।

नेपोलियन का सितारा

नीचा हुआ। लेपजिग में हार कर नेपोलियन फ्रान्स की ओर हटा और मित्रदल की सेना पेरिस पर चढ़ गई। नेपोलियन सिंहासन से उतारा गया। लुई अठारहवाँ फ्रान्स का राजा बनाया गया और नेपोलियन एलबा द्वीप में निर्वासित किया गया। यूरोप शान्त हुआ, राष्ट्र सेना कम करने का स्वप्न देखने लगे और इस विचार में लीन हुए कि युद्ध भविष्य में बन्द किया जाय। जिस तरह आज दिन पेरिस में उसी तरह उन दिनों वियना में सन्धि परिषद् बैठी थी। फ्रान्स के नष्ट-भ्रष्ट होने की लालसा सबके हृदयों में थी। किन्तु किसी ने कभी स्वप्न में भी यह नहीं देखा था कि उसका पतन होगा। जैसी आज जर्मनी की दशा है उससे भी गई गुजरी दशा उस समय फ्रान्स की थी। आज के समान जर्मनी के नहीं वरन् फ्रान्स के उपनिवेशों को, बाँटने को उसके माल से मालामाल होने को, मृत शरीर के रक्त चूसने को और उसकी हड्डियों को बुकनी करने को राष्ट्रों के प्रतिनिधि सितम्बर

१८१४ में वियना में एकत्र हुए। इंगलैण्ड था, जर्मनी था, रूस था, आस्ट्रिया था और छोटे-मोटे राष्ट्रों के कितने ही प्रतिनिधि थे। बिलकुल जैसा इस समय हो रहा है वही सामान था। परिषद् का अधिवेशन सितम्बर १४ से जून १५ तक होता रहा। फ्रान्स से प्रायः सब कुछ छिन गया। लूट में सिलोन, मारिशस, माल्टा, केप कालोनी, हेली, गोलैण्ड (द० अफ्रिका) इंगलैण्ड को मिला। उत्तरीय इटली आस्ट्रिया को, रूस को पोलैण्ड और जर्मनी को सेक्सनी और राइन प्रदेश मिले। यह प्रत्यक्ष माल था। परिषद् का अधिवेशन हो ही रहा था कि एलबा द्वीप से

नेपोलियन निकल भागा

फ्रान्स में पैर रखते ही वह फिर राजा हो गया। किन्तु यह राज्य केवल सौ दिनों तक चला। मित्र सेना ने चारों ओर से चढ़ाई कर दी और १८१५ में वाटर लू में वेलिंगटन ने नहीं—जैसा कि स्कूली पुस्तकों में हम पढ़ते हैं—वरन् जर्मन जनरल ब्लूचर ने नेपोलियन को जमीन से मिला दिया। फ्रेन्च सेना भाग खड़ी हुई और नेपोलियन पेरिस को भागा। मित्र दल की सेना पेरिस तक चढ़ गई और केसर की भांति नेपोलियन को प्राण बचाकर अपने राज्य से भागना पड़ा। समुद्र के किनारे पर नेपोलियन एक ब्रिटिश जहाज़ पर गया और कैद हो गया। जिस तरह आज कैसर को दण्ड दो, फाँसी दो, कैद करो, का बाजार गर्म है, उसी तरह से उस समय में हुआ और नेपोलियन सेन्ट हेलिना के द्वीप में कैदी बनाया गया। इस लेख के सम्बन्ध के लिए इतिहास के इतने पृष्ठ काफी हैं, किन्तु इनके साथ हम यह भी कह देना चाहते हैं कि पाठक यह न समझें कि उस समय सन्धि परिषद् कहाती अधिवेशन हुआ था, बँटवारा ही हुआ था और राष्ट्र संघ या राष्ट्रों की पंचायत नहीं हुई जिसका उद्देश्य

भविष्य में युद्धों का मिटाना होता। जैसे आज-कल राष्ट्र संघ का संघटन हो रहा है उसी प्रकार से उस समय में राष्ट्र संघ से भी अच्छे

पवित्र संघ

(Holy alliance) के नाम से राष्ट्रों की पंचायत हुई थी। वाटर लू के युद्ध के बाद ही रूस, आस्ट्रिया, जर्मनी आदि ने मिलकर पवित्र संघ स्थापित किया था। उसका उद्देश्य परस्पर रक्षा और फ्रान्स के सिंहासन पर नेपोलियन वंश के किसी मनुष्य को न बैठने देना था। आज दिन इसी प्रकार यूरोप में Hopenzallern कैसर के घराने के प्रति ऐसी ही प्रकट की जा रही है और कहा जा रहा है कि उस घराने का कोई मनुष्य जर्मनी के सिंहासन को सुशोभित न करे। यह सब हुआ किन्तु संधि परिषद् और

राष्ट्र संघ-व्यर्थ हुआ।

अन्तर्राष्ट्रीय प्रबंध और लूट-खसोट ऐसी हुई थी कि वह स्थायी नहीं रह सकती थी। अन्याय और अत्याचार के कारण संसार ने करवट बदला था जरूर किंतु वह कढ़ाई से निकलकर भट्टे में गिर पड़ा। ऐतिहासिकों की राय में १८१५ का पवित्र संघ १७८९ के संघ से किसी बात में अच्छा न था और उसका फल संसार को शीघ्र ही भोगना पड़ा। फ्रांस ने राजा की वंशपरम्परा को ताक पर रक्खा। हालैण्ड बेलजियम अलग अलग हुए। यूनान टर्की से छूटा और टर्की का अंग-भंग प्रारम्भ हुआ। इटली और पोलेण्ड में राष्ट्रीयता को सफलता प्राप्त नहीं हुई। वे फिर गुलाम ही रह गये। स्पेन में गड़बड़ी मची ही रही। इतना ही नहीं १५ वर्ष बाद वियना कांग्रेस और

पवित्र संघ नष्ट हो गया

१८३० में मित्रों की मित्रता काफूर हो गई। समझौता सब दूर हो गया और मनमानी शुरू हो गई। १८१५ से १८७१ तक का यूरोपीय इतिहास विचित्रताओं और महत्वाकांक्षियों का घर है। प्रजा ने प्रजातंत्र का पाठ पढ़ाना आरम्भ किया। इंगलैण्ड में (मैनचेस्टर में) एक प्रजातंत्रवादी का व्याख्यान सुनने को लोग एकत्र हुए। फौज ने सभा को भंग करना चाहा। सरकारी हुक्म से सुननेवालों पर सेना टूट पड़ी, कितने ही मरे और घायल हुए। प्रजा ने मन्त्रिमण्डल से बदला लेने का समस्त मन्त्रियों को एकदम संसार से उठा देने का निश्चय किया। वह छिपा न रहा और स्काटलैण्ड में इधर-उधर बलवे होने लगे। कृषकों में जागृति हुई। प्रजा ने अपना स्वत्व मांगना शुरू किया। और सुधारबिल पास हुआ। फ्रान्स में भी गड़बड़ आरम्भ हुआ। नेपोलियन तीसरा राजा बन बैठा। जर्मनी में भी बलवे होने लगे। और रूस ने टर्की को त्रस्त करना आरम्भ किया। ज़ार निकोलस ने बैठे-बिठाए एक बहाना ले

टर्की पर चढ़ाई

कर दी और उसके दो प्रदेशों पर कब्जा कर लिया। इंगलैण्ड टर्की की मदद को या बढ़ती हुई रूस की शक्ति को कम करने को तैयार हुआ। फ्रान्स ने भी टर्की की बाँह गही। फल यह हुआ कि मार्च १८५४ में इंगलैण्ड और फ्रांस ने रूस से युद्ध ठान लिया। पुराना शत्रु फ्रान्स मित्र हो गया। इटली कुछ ही समय बाद स्वतंत्र हो गया। दूसरी ओर जर्मनी के बिस्मार्क विधाता ने जर्मनी को धीरे-धीरे आगे बढ़ाना शुरू किया। कुछ ही समय में आस्ट्रिया फ्रान्स, रूस को अपनी कूटनीति से नीचा दिखाकर तथा वश में कर

जर्मनी रंगमंच पर आया।

और संसार को भीषण महाभारत देखना पड़ा। क्यों? क्योंकि वियना की कांग्रेस और पवित्र संघ ने अन्याय की दीवारें उठाई थीं। सन्धि परिषद् में राष्ट्रों ने लूट से अपना घर भरा था, उन्होंने फ्रांस को नष्ट-भ्रष्ट कर उसके उपनिवेश भी छीने थे। फ्रान्स की परिषद् में कोई सुनवाई न हुई थी। समस्त राष्ट्र स्वार्थ से अंधे हो रहे थे और सब की साम्राज्य-विस्तार की लालसा सब से परे थी।

भूमि की भूख

मदिरा के नशे की भाँति शान्त नहीं होती, मद जितना पीया जाय इच्छा और पिपासा उतनी ही और बढ़ती है। यह शान्त होनेवाली नहीं और शरीर के नष्ट होने पर ही शान्त होती है। भूमि की भूख की ज्वाला भी जब तक शरीर को भस्मीभूत नहीं कर लेती, बढ़ती ही जाती है और शान्त होना नहीं जानती। उस समय का बँटवारा नहीं स्थित था। अपने-अपने मतलब के प्रदेशों को लोगों ने धर दबाया था। फ्रांस की पूछ नहीं थी और जिसके हाथ लाठी थी उसकी जय थी। न्याय का कहीं नाम न था। एक राष्ट्र की प्रजा भेड़-बकरी की भाँति दूसरे राष्ट्र की प्रजा बना दी गई थी। उस समय फ्रांस की दशा आज की जर्मनी की दशा से कहीं हीन थी। राज पक्षवादी और प्रजातन्त्रवादी खून की नदियाँ बहा रहे थे। भीषण मारकाट और रक्तपात जारी था। किन्तु १८७१ का फ्रान्स जागा। उसने शक्ति का संचय किया और आज वह जर्मनी को उसी दशा में देख रहा है जिस दशा में कि वह था। सन्धि परिषद् को इन इतिहास के पृष्ठों को अपने सामने रखना चाहिए। सन्धि परिषद् विकृत रूप से चल रही है। भूमि की ज्वाला से सम्मिलित राष्ट्र जल रहे हैं और दूसरों

की भूमि दूसरों के अधिकारों को पद दलित करके वे उसे शान्त करना चाहते हैं। भूख इस प्रकार न शान्त हुई है और न हो सकती है। जर्मनी पंचायत में नहीं है। जिसकी भृकुटि से संसार के राष्ट्र हिल जाते थे, जिसकी कनखियों के इशारे के सहारे से संसार के राजनीतिज्ञ अपनी चालें चलते थे, राष्ट्रों की पंचायत से बहिष्कृत है। क्यों ? इसलिये नहीं कि न्याय हो रहा है वरन् इसलिए की अब वह १८१५ के फ्रान्स की भाँति शक्तिहीन है। उसके घर में झगड़ा चल रहा है और हुंकार की उसमें शक्ति नहीं।

कैसर को दण्ड

देने, उसे क़ैद करने की चर्चा का बाजार गर्म है। यही नेपोलियन के साथ भी हुआ था किन्तु नेपोलियन के न होते हुए भी फ्रान्स बलवान हुआ अपने शत्रु से उसने बदला लिया। मित्रराष्ट्र कैसर का अपमान नहीं कर रहे हैं कैसर से संसार से कुछ मतलब नहीं किन्तु जर्मन जाति संसार में रहेगी। जर्मन लड़के इतिहासों में आज की घटनाओं को पढ़ेंगे और मनुष्यों की भाँति वे इस अपमान का बदला चाहेंगे। सन् १८६३ में भी फ्रान्स राइन (Left Bank of the Rhine) के पश्चिमीय प्रदेशों पर कब्जा चाहता था। आज उसकी यह लालसा प्रबल हो उठी है। जर्मनी का यह प्राण है और जर्मनी से इसका अलग होना उसी तरह खटकेगा जिस तरह से कि अलसेस लोरेन आज तक फ्रान्स को खटकता रहा। जर्मन जनता भी विभाजित नहीं की जा सकती। आस्ट्रिया हंगरी के जर्मन निवासी भी यों न पड़े रहेंगे। यदि खून का कोई जोश है जो सब तरह के कष्टों को सहने के लिए मनुष्यों को प्रसन्नता से तैयार कर देता है तो जर्मन राष्ट्र इस समय से भी प्रबल शाली राष्ट्र होकर उदित होगा। और संसार को उसका सामना करना होगा। सुनते हैं, पोलैण्ड को बन्दरगाह

देने को जर्मनी का बन्दरगाह उससे छीना जायगा। क्या जर्मन राष्ट्र इसे सहन करेगा? जर्मनी के उपनिवेश भी छीने जा रहे हैं। न्याय के लिए? नहीं-नहीं, दूसरे राष्ट्रों की भूमि-पिपासा की शांति के लिए फ्रांस, इटली, दक्षिण अफ्रिका, आस्ट्रेलिया, जापान, यूनान और भारत सभी अधिकार-प्राप्ति के लिए पागल हो रहे हैं, इससे शान्ति नहीं स्थापित हो सकती।

टर्की का भी अंगभंग

हो रहा है। १८७७ से रूस कुस्तुनतुनियाँ पर कब्जा चाहता था। यूरुप में टर्की का होना यूरुपीय राष्ट्रों को बहुत दिनों से खटक रहा है। पीटर दी ग्रेट ने अपने वंशजों के लिए अपने बिल में ही लिख दिया था कि टर्की के प्रदेशों पर बिना कब्जा किये रूस की वृद्धि नहीं। इटली से लड़ाई हुई तब भी किसी ने टर्की की मदद नहीं की। सर एडवर्ड ग्रे ने कहा था कि इटली संसार के मञ्च पर सब से पीछे आया है। उसे राज्य विस्तार का मौका नहीं मिला। अब अवसर उसके हाथ आया है। ऐसी अवस्था में हम उसके मार्ग में नहीं खड़े होना चाहते। टर्की के कितने ही प्रदेश स्वतंत्र हो गए और वह भी उस समय में जब कि टर्की में नवयुवक दल का शासन था जिसकी सब लोग प्रशंसा कर रहे थे और जिससे को बहुत कुछ आशा थी, किन्तु टर्की को सुशासन स्थापित करने में सहायता देने की बात तो दूर रही उसी समय मौका पाकर राष्ट्र उस पर टूट पड़े। अमेरिका भी उस समय न्याय करने को नहीं खड़ा हुआ। १९१४ में इस महाभारत के आरम्भ होते ही यूरुपीय राजनीतिज्ञों ने

कुस्तुन्तुनियाँ का बँटवारा

निश्चित कर लिया था। उस समय "टाइम्स आफ इण्डिया" ने लिखा था कि सुलतान के हाथ से लेकर इसे जार को दे देना

चाहिए। उसने लिखा था कि रूस के पास सेना है, नौ-सेना है, वह बड़े वेग से उन्नति भी कर रहा है किन्तु जब तक कुस्तुन्तुनियाँ पर तुर्कों का कब्जा है, जब तक हार्डिनेल्स पर तुर्कों का अधिकार है तब तक रूस के व्यापार की वृद्धि नहीं हो सकती। उस समय यह चर्चा भी चली थी कि टर्की यूरोप से निकाल बाहर किया जाय। अब यही सब हो रहा है। फर्क यही है कि रूस अब मित्र नहीं रहा इसलिए रूस का नहीं वरन् सभी मित्र-राष्ट्रों का कुस्तुन्तुनियाँ पर समान अधिकार रखने की बात-चीत हो रही है। यह बहुत बुरा होगा। कुस्तुन्तुनियाँ केवल भौगोलिक नाम है, वह एक शहर मात्र भी नहीं है। वह मुस्लिम सभ्यता का हृदय है और कुस्तुन्तुनियाँ पर से तुर्क झण्डा हटाना वैसा ही हानिकर है, जैसे संसार से मुस्लिम सभ्यता को नेस्तनाबूद करना। यदि टर्की ने कोई पाप किया है तो जर्मनी उसका गुरु है। कोई बर्लिन पर कब्जा करना क्यों नहीं चाहता ? इस सम्बन्ध में हमको यह भी नहीं भूलना चाहिए कि मुस्लिम धर्म कोरा धर्म ही नहीं है। वह एक उच्चकोटि की सभ्यता है और संसार में उसका प्रभाव कम करना बहुत बड़ा पाप होगा। हमको जर्मनी या टर्की से कोई सम्बन्ध नहीं। हमको रूस, फ्रांस, अमेरिका आदि से भी इस मामले में कोई सम्बन्ध नहीं। हमको सम्बन्ध है केवल भारत और उसके भविष्य से। भारत संसार में है और भारत का भविष्य संसार के भविष्य से लिपटा हुआ है इसलिए

संसार के भविष्य

की चिन्ता हमको है। सन्धि-परिषद् में उस भविष्य का चित्र चित्रित हो रहा है। निकट भविष्य की झांकी का खाका छोड़ा जा रहा है। इसीलिए संसार के नागरिक की हैसियत से उनसे हमारा घना सम्बन्ध है। सन्धि-परिषद् स्वार्थ और भूमि की

भूख से मतवाली हो रही है! हम देख रहे हैं कि वह चिरस्थायी शांति की नहीं वरन् युद्ध की नींव डाल रही है। और इस कारण से हम समझते हैं कि भावी संसार-संकट का वह बीज वपन कर रही है। स्वभाग्य-निर्णय का मसला भी नया नहीं है। ट्रिपली के युद्ध में ही सर एडवर्ड ग्रे ने उसका बीज बोया था। हम आगे चलकर कभी इस बात को दिखलायेंगे कि संसार-संकट और स्वभाग्य-निर्णय में क्या सम्बन्ध है। इस समय इतना ही कह देना काफी होगा कि संधि परिषद् राष्ट्र-संघ आदि से संसार में शान्ति नहीं विराजेगी। शान्ति के लिए पवित्रता और न्याय की जरूरत है और शांति का स्वप्न संसार में उसी दिन देखा जा सकता है जब संसार में प्रत्येक जाति और राष्ट्र स्वतंत्रता प्राप्त कर ले। जब सभ्यता धर्म, न्याय, समता और उदारता की वेदी पर स्थित हो। जब इन्द्रियपरायणता और स्वार्थमय साम्राज्य-विस्तार की लालसा राष्ट्रों को मिट जाय और जब गोरे, काले, भूरे, पीले, ईसाई, मुसलमान, जापानी, चीनी, हब्शी सबको संसार में समान अधिकार प्राप्त हो।

सिंहावलोकन

[द्वितीय महायुद्ध—जिसका दुष्परिणाम अखिल विश्व अब भी भोग रहा है—के विषय में राजनीति के त्रिकालदर्शी स्वर्गीय पंडित जी ने सन् १९१९ ई० में ही भविष्यवाणी की थी "कि बीज-वपन की तैयारियाँ ज़ोरों से हो रही हैं..............." ऐसी भविष्यवाणी करते हुए विद्वान् लेखक ने यूरुप के गत ५८ वर्ष के इतिहास का सिंहावलोकन करते हुए विश्व के समस्त देशों की राजनैतिक मानसिक स्वास्थ्य का परीक्षण किया। जिसका परिणाम आप और हम अपनी आँखों देख रहे हैं।

यह गम्भीर लेख राजनैतिक व्यक्तियों, संस्थाओं और गोमुख व्याघ्री देशों की कूटनीति का जीवित इतिहास है। —सम्पादक]

बीज-वपन की तैयारी जोरों से हो रही है। राष्ट्र-संघ का सङ्गठन हो रहा है किन्तु बलवानों को जो रक्त की धारा में स्नान कर पवित्र हो चुके हैं और स्वतन्त्र हैं, जो दूसरे की बपौती पर कब्जा किए बैठे हैं और उन पर अन्याय कर रहे हैं या जो खून की नदियाँ बहा चुके हैं उनको ही संघ में स्थान मिल रहा है। इसके साथ ही साथ यह भी हो रहा है कि जर्मनी और रूस, जो चार दिन पहिले बलशाली थे, जो अब भी बलशाली और स्वतंत्र हैं, संघ में नहीं हैं क्योंकि राष्ट्र उनका अपमान करने पर अपने को बलशाली और विजयी दिखलाने पर तुले हुए हैं। इसका अर्थ यही है कि संघ भी

पर स्तम्भित हो रहा है। एक ओर यह हो रहा है, दूसरी ओर राष्ट्र सेना और नौ-सेना के सङ्गठन और वृद्धि में लीन हैं। अमेरिका सेना की वृद्धि के लिए घोर प्रयत्न कर रहा है। ६ अरब रुपया उसने खर्च करना निश्चित किया है और यदि अपने प्रयत्न में उसको सफलता प्राप्त हुई तो संसार में वह शीघ्र ही सर्वश्रेष्ठ हो जायगा। अमेरिका का प्रजातंत्र राष्ट्र, जो संधि का पथ-प्रदर्शक है जो शांति, सभ्यता स्वतंत्रता और स्वभाग्य-निर्णय का हिमायती है, यह कह रहा है। संसार के राष्ट्र भी चौकन्ने हैं और सब अपनी धुन में लगे हुए हैं। वे समझ रहे हैं कि बल के जोर से शक्ति के सहारे सब लोग इस समय मनमानी कर रहे हैं और शक्ति के बल से ही हम इस निश्चय को चिरस्थायी बनाए रह सकते हैं। इंगलैण्ड भी सो नहीं रहा है। एडमिरल जेलिको नौ-सेना की फिक्र में हैं। वह उसकी वृद्धि करेंगे। सेना की भी वृद्धि हो रही है। जर्मनी से अस्त्र रखाने के लिए इंगलैण्ड में सेना की भर्ती आरम्भ हो गई है। एक हजार से अधिक सैनिक नित्य सेना में सम्मिलित किए जा रहे हैं। जर्मनी भी सचेत है। वहाँ भी सेना का सङ्गठन हो रहा है। फ्रांस अन्तर्राष्ट्रीय सेना और नौ-सेना का केन्द्र फ्रांस में रखना चाहता है। जिसमें जर्मनी से वह अपनी रक्षा कर सके। रक्षा का सर्वोत्तम उपाय यह है कि उदारता और न्याय का व्यवहार कर वह जर्मनी के हृदय को अपनी मुट्ठी में करले किन्तु उसे यह प्रिय नहीं। जर्मनी सरकार के परराष्ट्र सचिव ने यह कहकर अपना अभी इस्तीफा दाखिल किया था कि फ्रांस युद्ध करने के लिए तुला हुआ है। और वह युद्ध करेगा। बेलजियम हालैण्ड की जमीन पर जबरदस्ती कब्जा करना चाहता है। डच कहते हैं कि

सूच्यग्रं नैव दास्यामि

एक सुई की नोक बराबर भी हम भूमि न देंगे। इटली और जेको-स्लावों में भी झगड़ा पड़ा हुआ है। इटली साफ़-साफ़ कह रहा है कि हम राष्ट्रपति विल्सन को पञ्च नहीं बनाना चाहते और न हम उसके फैसले को मानेंगे। बालकन युद्ध के अन्त होने पर विजयी-दल में लूट-मार के सम्बन्ध में जैसा झगड़ा हो गया था वैसा ही वैमनस्य फिर होता नजर आ रहा है। राष्ट्र-संघ में हमको विश्वास नहीं। उसके नियम जरूर अच्छे हैं, किन्तु वे न्याय और समान अधिकार पर निर्भर नहीं, दूसरे अन्ततोगत्वा शक्ति के फैसले पर उसका फैसला भी स्थित है। साथ ही जर्मनी, रूस आदि के सम्मिलित न होने से सर्वश्रेष्ठ रूप में भी वह केवल

अन्तर्राष्ट्रीय पुलीस

का ही काम कर सकता है। जर्मनी या रूस से कभी युद्ध होने पर राष्ट्र-संघ के राष्ट्र—यदि आज के राष्ट्र उस समय तक एक रहें, तो जैसे आज वैसे ही उस समय में अधिकतर संख्या उनकी है जो जर्मनी से मेल रखने के पक्ष में हैं। यह बात भी मानी से ख़ाली नहीं है। दक्षिण अफ्रिका के राष्ट्रीय पक्षवाले इंगलैण्ड से सम्बन्ध अलग करना चाहते हैं और अमेरिकन सेनेट अर्थात् अमेरिका तथा राष्ट्रपति विल्सन जहाँ तक मालूम होता है बोअरों का पक्ष लेंगे। आयर्लैण्ड से यद्यपि समाचार नहीं मिल रहे हैं जो रूस और जर्मनी में फैल चुके हैं। इस समय दशा ऐसी ही है।

वर्तमान यूरोपीय स्थिति

को समझने और यूरुप के भविष्य का अन्दाजा लगाने के लिए यह आवश्यक था कि यूरुप के पिछले और विशेषकर पिछले तीस वर्षों के इतिहास का हमको ज्ञान हो; क्योंकि इन्हीं वर्षों में उन सब राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक शक्तियों का विकास

हुआ था। जिनकी प्रेरणा से यूरोपीय महाभारत हुआ और जिनका प्रभाव बहुत दिनों तक यूरूप तथा संसार पर रहेगा। "संसार-संकट" (३) और "संसार-की सैर" में इस समय के इतिहास पर हम प्रकाश डालेंगे। इससे आपको यह मालूम हो जायगा कि फ्रांस का पतन कैसे हुआ? इंगलैण्ड क्योंकर प्रधान हुआ, मित्रदल कैसे बना और परस्पर मारकाट कैसे हुई? हम आपको यह भी दिखलायेंगे कि जैसे आज का मित्रदल सदा यही कहता रहता है कि जर्मनी की जनता का नहीं, जर्मन प्रदेश का नहीं, वरन् जर्मन फौजीपन का शत्रु है। जर्मन फौजीपन को ही वह नष्ट-भ्रष्ट करना चाहता है। इसी प्रकार से पिछली शताब्दी में उस समय का मित्रदल फ्रांस के फौजीपन का शत्रु बना था। ऐतिहासिक बातों तथा स्थिति को और भी समझने तथा योग्य बनाने के लिए एक बात रह गई थी वह यह कि रङ्गमञ्च पर आकर

जर्मनी ने क्या किया ?

इतना लिख देने से इतिहास के पृष्ठ एक तरह से पूरे हो जायेंगे। साथ ही जर्मनी की विचित्र शक्ति और यूरुपीय महाभारत के अनेकों बीजों का आपको पता लग जायगा। बिस्मार्क ने जो कुछ किया वह पाठकों को विदित है। उसने जर्मनी को बलशाली बना दिया। इटली और आस्ट्रिया उसके मित्र थे। इसी समय में

कैसर राजा हुए।

कैसर की शक्ति, उनके स्वभाव और अपनी इच्छा को कार्य का रूप देने की शक्ति तथा मार्गों के रोड़ों को उखाड़ फेंकने की शक्ति का अन्दाजा आप इसी से लगा लीजिए कि सिंहासन पर पैर रखते ही उन्होंने एक मिनट में बिस्मार्क को जो उस समय में संसार और जर्मनी का प्रधान मनुष्य था, निकाल बाहर किया

और बिस्मार्क के किए-धरे कुछ न हुआ। फ्रांस अकेला रह गया था। रूस की धाक जमी हुई थी। किन्तु कैसर ने रूस को तनिक भी परवा न कर आफ्रिका और एशिया के प्रदेशों को हड़पना शुरू किया। जर्मनी आस्ट्रिया और इटली का गुट था; कोई राष्ट्र अकेला मुकाबले पर आ नहीं सकता था। रूस स्वयं बढ़ना चाहता था, किन्तु वह अकेला था उसने तुरन्त फ्रांस को मिलाया। फ्रांस के रुपये से, फ्रांस की सहायता से, रूस बल-संचय करने लगा। इधर रूस और फ्रांस में सन्धि हुई उधर

चीन-जापान-युद्ध

हुआ। जापान विजयी ठहरा। क्षति-पूर्ति में बहुत-सा रुपया चीन को देना पड़ा। साथ ही जापान ने चीन के प्रदेशों पर भी कब्जा कर लिया। मंचूरिया, पोर्ट आर्थर पर जापानी झण्डा फहराने लगा। साथ ही रुपया न अदा होने तक चीन ने We-Hai-We वी हाई वी प्रदेश का दखल जापान को दे दिया। कैसर ने देखा, संसार में एक प्रतिद्वन्दी पैदा हो रहा है और उन्होंने फ्रान्स और रूस को हस्तक्षेप करने के लिए उभारा। मंचूरिया में जापान के प्रधान होने से रूस और फ्रांस के स्वार्थों को धक्का पहुँचने की संभावना थी। पोर्ट आर्थर के लिए बहुत दिनों से लालायित रूस जर्मनी का सहारा पाकर तुरन्त तैयार हो गया। फ्रांस ने भी मित्र का साथ दिया। जर्मन, रूसी और फ्रान्सीसी राजदूत जापान के प्रधान काउन्ट हेयासी के पास पहुँचे और पहुँच कर उन लोगों ने चीन के प्रदेशों पर कब्जा न करने के लिए उनसे कहा। रूसी और फ्रान्सीसी राजदूत मुलायमियत से बातें कर रहे थे, किन्तु जर्मन दूत ने अकड़ कर कहा—"यदि तुम नहीं मानते तो रूस, फ्रांस और जर्मनी की सेनाएँ रणक्षेत्र में आती हैं, चलो मुकाबला करो!"

जापान का हौसला टूटा

वह कर ही क्या सकता था ? रूस, फ्रांस और जर्मनी चीन के मित्र बन बैठे। रूस ने चीन में अपनी रेलें दौड़ाईं। फ्रांस में रेल-विस्तार तथा व्यापार के स्वत्व प्राप्त किये। रूस ने कुछ ही समय बाद पोर्ट आर्थर और आस-पास के समुद्र का २५ वर्ष के लिए चीन से पट्टा लिखा लिया और मंचूरिया पर कब्जा कर लिया। इंगलैण्ड ने जापानी सेना के पहिले ही, हटते ही, वी-हाई-वी पर अपना झण्डा उड़ा दिया था। जर्मनी को कुछ नहीं मिला। वह अवसर ढूँढ रहा था। चीन के कुछ लोगों ने चीन से यूरुप-वासियों को निकाल बाहर करना चाहा। षड्यन्त्र रचा गया और बलवा हुआ। जर्मनी ने यूरुपीय राष्ट्रों को उभारा। कैसर ने कहा कि चीनियों ने दो पादरियों की हत्या की है। धर्म की पुकार मची और राष्ट्र चीन पर चढ़ दौड़े। जर्मनी ने कियाचौ पर कब्जा कर लिया, किन्तु अन्ययूरुपीय राष्ट्रों को यह रुचि-कर न था। पूर्वीय संसार में वे जर्मनी का जमाना नहीं देख सकते थे। आख़ीर में यह तय हुआ कि चीन जर्मनी को ९९ वर्ष का पट्टा लिख दे और जर्मनी को यह अधिकार होगा कि वह वहाँ अपने क़िले आदि बना ले।

कैसर का पैर

जमा और आगे बढ़ने की उनको फिक्र हुई। चीन में जर्मनी का रंग जम गया। जर्मन व्यापार बढ़ गया। जर्मन बैंक चीन में फैलने लगे और चीन की मृत्यु और उस पर अधिकार का दिन कैसर गिनने लगे। किन्तु पड़ोसी जापान मार्ग में कंटक था। कैसर ने जापान को त्रस्त करना चाहा; किन्तु जापानी सैनिकों की वीरता वे चीन-जापान-युद्ध में देख चुके थे। साथ ही जापान चीन के समीप होने से युद्ध में जर्मनी से पीछे नहीं पड़ सकता

था। इसलिए दूसरे मनुष्य का हाथ उन्होंने सर्प के बिल में छोड़ना चाहा। कैसर ने पीतातंक का रौला मचाया। यूरुपीय संसार से उन्होंने कहना शुरू किया कि जापान की पीली जाति संसार पर, यूरुप पर कब्जा करेगी, जापान की शक्ति कम करनी चाहिये। उन्होंने जार के पास चित्र भेजा, जिसमें जापानी सैनिक यूरोपीय राष्ट्रों पर कब्जा किए बैठे थे। रूस को जापान से भिड़ने के लिए उन्होंने उभाड़ा और जार को वचन दिया कि जब तक वे जापान से लड़ते रहेंगे जर्मनी रूस से युद्ध नहीं ठानेगा। एक ओर कैसर यह कर रहे थे दूसरी ओर जापानी सैनिकों को वे युद्ध-कला की शिक्षा जर्मन जनरलों से दिला रहे थे। कैसर को रूस की महती सेना का भय था। उसके कारण वे यूरुप में हाथ-पैर नहीं बढ़ा सकते थे। उधर पूर्वीय संसार में जापान मार्ग में कंटक था। दोनों ही का विनाश वे देखना चाहते थे और उन्होंने दोनों को भिड़ा दिया।

रूस-जापान युद्ध

हुआ। एक ही निशाने से दो बाजों को उन्होंने मार गिराया। रूस हार रहा था। साथ ही फ्रांस का गला घुट रहा था, क्योंकि फ्रांस का रुपया रूस में बहुत लगा हुआ था। युद्ध जारी रहते और हारने पर वसूली में गड़बड़ पड़ती। फ्रांस त्रस्त था। दूसरे उसका मित्र युद्ध में था। इसी समय में अवसर देख कैसर ने "मोराको" पर निगाह फेरी। कैसर टैंजीर पहुँचे। फ्रान्स के प्राण-पखेरू बाहर आने-जाने लगे। किन्तु कैसर ने मोराको पर कब्जा नहीं किया। कैसर ने मुसलमानों को मिलाना चाहा। कैसर मुसलमानों के रक्षक बन बैठे। आस्ट्रिया ने उनका साथ दिया। कैसर इंगलैण्ड को सर करना चाहते थे किन्तु फ्रान्स के परराष्ट्र सचिव मि० दलकासे जर्मनी के घोर शत्रु थे। उनके रहते यह संभव न था कि फ्रान्स जर्मनी से मिले। कैसर ने

"मोराको" पर कब्जा करने के लिए युद्ध की धमकी दी।

लड़ता कौन ?

रूस जापान में था। इंगलैण्ड के पास सेना नहीं थी। फ्रान्स के पास गोला-बारूद तैयार न था, फ्रान्स बैठ गया। मामला पंचायत में उपस्थित हुआ। कैसर को मोराको की उतनी चिन्ता न थी जितना कि वे फ्रान्स को अपने हाथों में करना चाहते थे। उन्होंने कहा कि हम मोराको नहीं चाहते, न हम उस पर कब्जा करेंगे; किन्तु हम मि० दुलकासे को पसन्द नहीं करते। ये झगड़ालू हैं। फ्रान्स अपना परराष्ट्र सचिव किसी दूसरे को नियत करे। फ्रान्स सस्ता छूटा; उसने तुरन्त दुलकासे को ढुलका दिया। कैसर समझे, इससे फ्रान्स-निवासियों के हृदय में उन्होंने स्थान पा लिया होगा।

इंगलैण्ड को त्रस्त

करने के लिए वे जाल बिछाने लगे। जिस तरह जार के पास उन्होंने चित्र भेजा था उसी तरह शान से उन्होंने अपना प्रसिद्ध तार बोअर प्रेसीडेण्ट क्रूगर के पास भेजा। क्रूगर बर्लिन आये। उनकी बड़ी खातिर हुई। कैसर ने उनको खूब मिलाया और वे बोअर जाति की स्वतंत्रता के लिए इंगलैण्ड से लड़ने को तैयार किये गये। फ्रान्स ने भी बोअरों का पक्ष समर्थन किया और कैसर ने सहायता देने का वचन दिया।

बोअर-युद्ध

आरम्भ हो गया। इंगलैण्ड की सेना और धन की बड़ी हानि हुई। किसी तरह राम-राम करके सन्धि स्थापित हो गई। कैसर का मतलब कुछ निकला, किन्तु वे सन्तुष्ट न हुए। अब भी इंगलैण्ड उनको पहाड़ दिखाई देता था और उन्होंने नूतन शक्ति संचय करना शुरू किया।

यूरुप की सैर

[मई सन् १९१९ में भारतवर्ष के मेधावी, हिन्दी-पत्रकार पं० कृष्णकान्त मालवीय ने यूरुप की राजनैतिक सैर की थी—दिल से, दिमाग़ से और 'अभ्युदय' कार्यालय में बैठे-बैठे !

इस राजनैतिक यात्रा में आपने रूस, जर्मनी, मध्य-यूरोप, हंगरी और फ्रांस तथा ब्रिटेन के हृदय की धड़कन का अनुभव किया था उनका 'सियासी नब्ज' पकड़ कर !

यूरुप के मानसिक स्वास्थ्य के निरीक्षण और परीक्षण के उपरान्त आपने भविष्य-वाणी की थी कि "संसार में हाहाकारमयी भीषण-क्रांति की लपटें लहक रही हैं। ऐसा कोई देश या महाद्वीप नहीं जहाँ ये न फैल रही हों। इसका फल क्या होगा ? भविष्य के गर्भ में क्या छिपा है—यह निकट भविष्य में मालूम हो जायगा। हम इतना ही कह सकते हैं कि संसार का राजनैतिक आकाश निर्मल नहीं है। यह निर्मल उसी दिन होगा जिस दिन संसार के सभी देशों के शासन का भार उन देशों के निवासियों के हाथ में ही रहेगा।" —सम्पादक]

संधि होगी या नहीं ?

"अफ़सरों और कानूनों की इज्ज़त" आफ्रिका और यूरोप में वही काम दे रहा है जो काम भारत में "शान्ति, व्यवस्था और कानून" के मसले से लिया जाता है। मांटेगू चेम्सफोर्ड सुधार में कितनी ही बातें इसी मसले की दोहाई देकर हम लोगों से दूर रक्खी गईं और आजकल इसी मसले के नाम पर पंजाब में जो कुछ हो रहा है वह किसी से छिपा नहीं है। यूरुप के हीन पुरुषों या कमजोर

जातियों को "अफसरों और कानूनों की इज्जत" के मसले की चक्की पीसे डालता है। रूस में प्रजा ने निरंकुश शासन को नष्ट किया। स्वतन्त्रता की बयार स्वतंत्र रूप से वहाँ बहने लगी, किन्तु यह हवा दूसरों को पसन्द न थी। दूसरों के मामलों में हस्तक्षेप करने का जिन्होंने ठेका ले रक्खा है, जो रात-दिन इसी चिंता में व्यस्त रहते हैं कि दूसरे अपना प्रबन्ध कैसा करते हैं, चढ़ दौड़े और रूस को सत्यानाश में मिला देने के लिए इन दोस्तों ने कोई बात उठा न रक्खी। सैनिक और मजदूर अच्छे नहीं, छोटे आदमी हैं; इसलिए उनकी कौंसिल नष्ट कर दी गई। सोवाइट्स अच्छे नहीं; इसलिए उनको सहारा नहीं दिया गया। साम्य-वादी बुरे हैं, इसलिए उनसे सम्बन्ध रखना, उनके शासन को स्वीकार करना ठीक नहीं। बोलशेविक नीचातिनीच हैं, वे दुष्ट हैं, पाजी हैं इसलिए उन पर चढ़ाई कर देना चाहिए। कहा जाने लगा कि नष्ट साम्यवादी अच्छे हैं इनको सहायता देनी चाहिए। उनके नेता मि० केरन्सकी एक अच्छे व्यावहारिक रीति से इंगलैण्ड में नजरबन्द हैं। पूर्वीय रणक्षेत्र की रक्षा की अब आवश्यकता नहीं। साईबेरिया में जर्मन सेना से लड़ना भी नहीं है किंतु उस पर चढ़ाई जारी है। पेट्रोग्राड पर चढ़ाई करने की लोग राय दे रहे हैं। सुनते हैं कि बोलशेविकों पर चढ़ाई होगी, किन्तु हम समझते हैं कि सोवाइट मिट्टी में मिलाये जायेंगे, और काले महासागर की ओर से चढ़ाई हो रही है। एक ओर यह हो रहा है दूसरी ओर पुराने निरंकुश रूस के अधिकारी फिर स्वतंत्रता प्राप्त कर रहे हैं। मि० केन्सरकी रूस नहीं जा सकते, किन्तु मि० शेजनाफ युद्धकाल के परराष्ट्र-सचिव या यों कहना चाहिए कि १६१४ के युद्ध करने या करानेवाले दल के अग्रणी, साईबेरियन सरकार के फिर परराष्ट्र-सचिव हो गए हैं। इतना ही नहीं, मित्रदल उनको मानता भी है।

जर्मनी की दशा

भी ऐसी ही है। रूसी विप्लव की भूलों से बचता हुआ जर्मनी सीधा खड़ा हो जाना चाहता है किन्तु संसार के ठेकेदारों को यह पसन्द नहीं। उसके मार्ग में एक न एक अड़चनें डाली जा रही हैं और ऐसे ही ईश्वर की बड़ी ही कृपा हो, तो जर्मनी जाल से निकल सकता है। जर्मनी के लिए एक भी अच्छा शब्द कहने-वाला, उसको सहारा देनेवाला संसार में कोई नहीं। यदि संसार दूर से तमाशा देखता रहा तो जर्मनी की भी वही दशा होगी जो रूस की हुई, किन्तु इसकी फिक्र किसको है ? मि० लायड जार्ज ने गिल्डहाल में वक्तृता देते हुए जर्मनी के विधाताओं के पतन पर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। साथ ही उन्होंने उसी जबान में जनता को भी खरी-खोटी सुनाई। जर्मन विप्लव का उन्होंने स्वागत नहीं किया, न यही कहा कि जर्मन जनता ने बड़ा भारी काम किया। मि० चर्चिल का रोना यह है कि शत्रु-देशों में "अफ़सरों और कानून की इज्जत न रही।" मि० चर्चिल की नींद हराम हो गई, और वे कहते हैं कि इस दशा को सुधारने का उत्तरदायित्व विजयी मित्रदल के राष्ट्रों पर है। सीधी भाषा में मि० चर्चिल की इच्छा है कि मित्रराष्ट्रों को सेना सहित तैयार रहना चाहिए और विप्लवों, बलवों आदि का अन्त करना चाहिए।

मध्य यूरुप

अन्न के नाम पर पिसा जा रहा है। जनता भूखों मर रही है। अन्न का भीषण अकाल वहाँ पड़ रहा है। बाहर से कहीं से मित्रदल की कड़ी देख-रेख के कारण गल्ला नहीं पहुँच सकता। भूख से बेबस बनाए जाकर वे शर्तों के मानने पर विवश किये जानेवाले हैं। आस्ट्रिया के निवासी जर्मन, जर्मन साम्राज्य में

मिलना चाहते हैं। इससे जर्मनी और भी शक्तिशाली हो जायगा। यह इंगलैण्ड और फ्रान्स को पसन्द नहीं और इसीलिए विराव जारी है। संसार का नियम है कि शके अस्त्र रखते ही विजयी का यह कर्त्तव्य होता है कि घेरा उठा दे और शत्रु जनता को अन्न पहुँचावे, जिससे वह भूखों न मरे। जर्मनी के बिस्मार ऐसे कठोर हृदय शासक ने भी फ्रान्स के साथ यही किया था किन्तु आज फ्रान्स यह करने को तैयार नहीं और संसार में फ्रान्स सहृदय प्रसिद्ध है और जर्मनी क्रूर। आस्ट्रो-जर्मनों से कहा जा रहा है कि जर्मन साम्राज्य में सम्मिलित न होने का वचन यदि वे दे दें तो उनको अन्न दिया जायगा। जेकोस्लावदल ऐसा कह रहा है और कहा जाता है कि मित्रदल की सलाह से यह सब हो रहा है।

हंगरी

की दशा और भी खराब है। मित्रदल दलबल सहित चढ़ जाने की धमकी दे रहा है। हंगरी की जनता के पास लड़ाई का सामान नहीं है। हंगरी-निवासियों से सुनते हैं कहा जा रहा है कि सोवा-इट सभा आदि को नष्ट-भ्रष्ट कर दो तो आक्रमण न किया जायगा। एक ओर दशा यह है दूसरी ओर बुधापेस्ट की सेन्ट्रल सोवाइट सभा ने रोमानियनों जेकोस्लावों के प्रति स्वरक्षणार्थ युद्ध की घोषणा कर दी है। बियना की दशा अन्न के बिना शोचनीय है। वहाँ गड़बड़ भी हो गई है। लोगों ने पार्लियामेंट के भवन में आग लगा दी। तत्त्व यह है कि मध्य यूरोप की दशा बहुत ही हीन है। क्रान्ति को वहाँ सफलता प्राप्त होती नहीं दिखाई देती। सफलता जीवन पर निर्भर है जीवन अन्न पर, और अन्न मित्रदल की कृपा प्राप्त करने पर, जिसका प्राप्त करना कठिन है। क्रान्ति इस तरह से रूस, जर्मनी, आस्ट्रिया, हंगरी, बलगेरिया आदि में

उत्तरोत्तर वृद्धि प्राप्त कर रही है। इसका नतीजा यह होगा कि क्रान्ति संसारव्यापी होगी। अभी से आस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रिका, कैनाडा आदि से बोलशेविज्म के प्रचार की खबरें आने लगी हैं। कहीं-कहीं कुछ उपद्रव यद्यपि अभी नाममात्र को ही शुरू हो गये हैं। असल में बात यह है कि जनता शासक-समाज याने अमीरों के शासन से त्रस्त है और गरीब अपना प्रबन्ध अपने हाथों में लेना चाह रहे हैं। उन लोगों ने अपना सर उठाया है और धनी यह चाहते नहीं कि उनकी विजय हो। इंगलैण्ड या मित्रदल का कोई राष्ट्र रूस से सन्धि करना गौरव की बात नहीं समझता; क्योंकि रूस का शासन साधारण मनुष्य अपने हाथ से अपनी रोटी कमाने वाले कर रहे हैं। हमको यह भी सन्देह हो रहा है कि

जर्मनी से सन्धि होगी

सन्धि होगी या नहीं, यह भविष्य की बात है और कोई कह नहीं सकता कि होगा क्या? किन्तु जो कुछ हो रहा है वह शुभफल का देनेवाला नहीं। उधर ज्योंही यह शक हुआ था कि जर्मनी में भी बोलशेविज्म का दौर-दौरा होना चाहता है, मित्रदल घबरा उठा था और किसी तरह तुरन्त सन्धि कर लेने को तैयार था। 'वेस्ट मिनिस्टर गजट' के एक प्रधान संवाददाता ने यह खबर दी थी कि संधि की शर्त्तें अब ऐसी रक्खी जायेंगी कि जिनको जर्मनी तुरन्त स्वीकार करले, किन्तु यह हुआ नहीं। फ्रान्स जर्मनी के नाम पर उधार खाये बैठा है। वह उसे लुञ्ज-पुञ्ज कर ही छोड़ना चाहता है। कहा जाता है और कुछ अंशों में यह सच है भी कि जर्मनी के घर में सब ठीक है, उसे विशेष हानि नहीं पहुँची है। उसके कलकारखाने सब जोरों में काम कर रहे हैं, संगठन भी पूरा है। सन्धि होते ही कुछ ही समय में व्यापार, व्यवसाय और विद्या, बुद्धि

से वह ज्यों का त्यों हो जायगा, सशक्त हो जायगा। फ्रान्स तथा यह देश नहीं कर सकेंगे और उस दशा में जर्मनी बलवान् हो निर्बलों को कुचल कर बदला चुकायेगा। फ्रान्स की दलील यही है और इसीलिए वह जर्मनी से कड़ी से कड़ी शर्तें करने पर तुला हुआ है। इस समय जर्मनी में कोई पूर्ण रूप से संगठित शासन नहीं है। अन्न के अकाल से तथा घिराव के कारण माल के आ-जा न सकने के कारण जर्मनी बहुत कमजोर है, साथ ही घर में फूट भी है। इन सब बातों को ख्याल में रखकर यह समझा जाता था कि वह किन्हीं शर्तों पर भी सन्धि कर लेगा क्योंकि वह विवश हो रहा है किन्तु बात यह नहीं रही। जर्मनी ने अपना स्वर ऊँचा किया है और वह साफ़-साफ़ कह रहा है कि शर्तें यदि उचित न होंगी तो

सन्धि न होगी

यही खबर घबरा देने के लिए काफ़ी थी किन्तु इसे लोग धमकी समझ सकते थे, कह सकते थे कि यह गीदड़भपकी है, किन्तु अब यह और भी भीषण समाचार मिला है कि

जर्मनी और रूस की सन्धि

स्थापित हो गई है। शर्त यह है कि जर्मनी मित्रदल से सन्धि न करेगा और आवश्यकता पड़ने पर रूस २० वर्ष तक जर्मनी को खाद्य वस्तुओं और सैनिकों की सहायता देगा। यदि यह सत्य है तो यह बहुत भयंकर बात हो गई है। यदि रूस जर्मनी एक हो गये तो रूस, जर्मनी, आस्ट्रिया हंगरी, बल्गेरिया और टर्की का एक जबर्दस्त दल तैयार हो जायगा और बोलशेविकों, सोवीयटों व क्रान्तिकारी राष्ट्रों की अन्य राष्ट्रों से मुठभेड़ होगी। एक ओर यह है, दूसरी ओर यह भी खबर है कि जर्मन प्रतिनिधि

बार्सेल्स आ रहे हैं। संधिपत्र पर वे हस्ताक्षर भी करेंगे। दस-पाँच दिन में यह मालूम हो जायगा कि संधि हुई या नहीं? सन्धि हो या नहीं किन्तु यह निश्चय-सा प्रतीत होता है कि युद्ध का युग अभी समाप्त नहीं हुआ है। संसार में भीषण क्रान्ति की लहर बढ़ती दिखाई दे रही है। कोई देश नहीं, कोई महाद्वीप नहीं, जहाँ यह फैल न रही हो, इसका फल क्या होगा, भविष्य के गर्भ में क्या छिपा है, यह निकट भविष्य में मालूम होगा। हम इतना ही कह सकते हैं कि संसार का राजनीतिक आकाश इधर कुछ वर्षों तक स्वच्छ तथा निर्मल नहीं दिखाई देता और यह निर्मल उसी दिन होगा जिस दिन संसार के सभी देशों के शासन का भार उन देशों के निवासियों के हाथ में ही रहेगा।

[ता० ३ मई, सन् १९१९

———
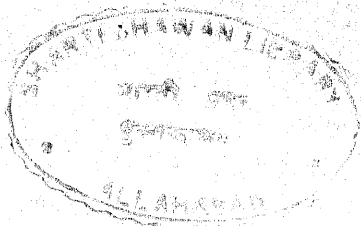
यूरुपीय महाभारत के दृश्य

[प्रथम दृश्य]

दूसरे महाभारत की तैयारी

[यूरुप का द्वितीय महासमर—जो बाद में विश्व-युद्ध बन गया——का बीजारोपण मिस्टर लायड जार्ज और राष्ट्रपति विलसन के शासन काल में ही किया गया था। ब्रिटेन और अमेरिका के राहु-केतु जर्मनी पर कैसी कुदृष्टि लगाये थे। शान्ति, सुरक्षा के नाम पर कैसे राजनैतिक खेल खेले जाते थे, जिन्हें सर्व-साधारण समझने में असमर्थ थे। उन चालाकों की चाल को परखा था—'अभ्युदय' के सर्वस्व स्व० पं० कृष्णकान्त मालवीय ने। जिनके आत्मविश्वास और राजनैतिक अनुभव ने ललकार कर कह दिया था कि ब्रिटेन और अमेरिका में जो खेल खेले जा रहे हैं वे आगामी महाभारत के पूर्व रंग हैं। युद्ध टल नहीं सकता खून बहकर ही रहेगा। हुआ भी वही—और होगा भी वही—यही इस प्रथम दृश्य में यूरुप के राजनैतिक नाट्य का प्रदर्शन है—जिसे पढ़कर कोई भी कूटनीतिज्ञ कलाकार बन सकता है।—सम्पादक]

लाठी के बल सन्धि

मि० लायड जार्ज ने कुछ दिन हुए ठीक ही कहा था कि—
He feared reaclion more then Bolshevism
उनको बोलशेविज्म की अपेक्षा प्रतिक्रिया से अधिक भय मालूम होता है। वे समझते थे कि बोलशेविज्म से नहीं वरन् प्रतिक्रिया से यूरुप का सत्यानाश होगा। बात कुछ ऐसी ही होती नजर आ रही है। प्रत्येक मिनट जो कुछ हो रहा है वह इसी धारणा को पुष्ट कर रहा है कि युद्ध इसी युद्ध के अन्त से या सन्धि हो जाने

से समाप्त न हो जायगा। मालूम यह पड़ रहा है कि अभी यूरुप में कुछ और भीषण परिवर्तन होंगे। यूरुप अब पुराना यूरुप, जैसा कि पुराने राजनीतिज्ञों को वह दिखाई देता था, नहीं रहा। यह सच है कि यूरुप का महाद्वीप अब भी वही है, यूरुपीय जनता भी बहुत-सी अब तक वही है किन्तु इसके साथ-साथ यह भी सच है कि यूरुप का पुराना कूटनीति का स्वरूप पूर्णरूप से नष्ट हो गया है।

इसका संगठन राइन नदी से प्रशान्त महासागर तक उत्तरी समुद्र से मुस्लिम साम्राज्य तक नष्ट-भ्रष्ट हो गया है और साथ ही साथ छोटे-छोटे और द्वितीय और तृतीय श्रेणी के संगठन जो इस पर निर्भर थे और जिनका यह स्रोत था अपने-अपने अस्तित्व को खो बैठे हैं। यूरुप को एक नूतन संगठन की आवश्यकता है। आवश्यकता यह है कि राजनीतिक, सामाजिक और औद्योगिक क्षेत्रों में नूतन बीज वपन किये जायँ, नूतन नियम बनाये जायँ और नूतन स्तम्भों पर यूरुपीय भविष्य की नींव डाली जाय। इसी पर संसार की भावी शांति, व्यवस्था और सुरक्षा स्तम्भित है किन्तु यह होता नहीं दिखाई देता। हम देख रहे हैं कि पुराने राजनीतिज्ञ उन्हीं दृष्टियों से कार्यक्षेत्र में काम कर रहे हैं जिनको लेकर वे पैदा हुए थे। इस नूतन संस्कार के जमाने में भी कूटनीति, स्वार्थ, साम्राज्य-विस्तार और अनुदारता के उन्हीं सिद्धान्तों से वे प्रेरित हैं जिनके कारण संसार को यह भीषण महाभारत देखना पड़ा था। युद्ध का उद्देश्य कम से कम कहा जाने को यह था कि संसार से जर्मन फौजीपन का नाम उठा दिया जाय और न्याय को शक्ति पर प्रधानता दी जाय। जर्मन फौजीपन का अस्तित्व स्थूल दृष्टि से और स्थूल रूप से संसार में नहीं रहा किन्तु हमको इसके कहने में संकोच नहीं कि जर्मन फौजीपन छायारूप से या भावरूप में अब भी जीवित

है और सन्धि-परिषद् में एकत्र मित्रदल के प्रतिनिधि सन्धि की शर्तों को जर्मन फौजीपन के साँचे में ही ढाल रहे हैं। अब वे उन गुप्त सन्धियों का सहारा ले रहे हैं जो १९१५-१६ में हुई थीं जब कि वे समझे थे कि सहज में।

जर्मनी पर विजय

प्राप्त कर लेंगे। और यूरोप अपने पुराने रास्तों पर चलता रहेगा। उन्होंने यह नहीं समझा कि सन्धि होने के समय तक यूरुपीय जनता का अस्तित्व एक बार डावाँडोल हो उठेगा और इसका फल यह होगा कि क्रान्ति की अग्नि की चिनगारियाँ सभी राष्ट्रों में इधर-उधर ढेरों में पड़ी दिखाई देंगी। जो घटनाएँ घटी हैं उनमें यह प्रत्यक्ष है कि यूरुप में जर्मन फौजीपन या उसका किसी प्रकार का छाया-शरीर स्थायी जीवन नहीं लाभ कर सकता। मित्रदल एक भीषण अत्याचारमय प्रणाली को नष्ट करने को उठा था। उसे सफलता प्राप्त हुई। पाशविक शक्ति-संगठन, साम्राज्यवाद और निरंकुश उत्तरदायित्वहीन शासन का अन्त हो गया। सत्यानाश करने के प्रयत्न का फल सत्यानाश हुआ है और इस प्रयत्न से हम लाग अपनी आँखें नहीं फेर सकते। शेष जो रह गया है वह और कुछ नहीं केवल भग्नावशेष है, सम्भावनाएँ हैं। बहुत दिनों से त्रस्त नवजीवन की आशालताओं का पनपना है, पुरानी आशाओं का बन्धन-मुक्त होना है। पुराने अत्याचारों का बदला चुकाना है और असीम आन्दोलन और गड़-बड़ का होना है। चारों ओर (Chaos) उलट-पुलट, अंधेरखाता और भीषण गड़बड़ी है। यह भयानक है हानिकर है, भयावह है कदाचित् छूतमय और छूत से फैलनेवाला है, और नितान्त बेचैनी फैलाने वाला है। किन्तु एक वस्तु को अच्छी तरह से सब कुछ जानते हुए और होश में होते हुए ध्वंस कर हम विध्वंस को

देखते हुए चुप नहीं बैठ सकते और न यह कहने से काम ही चल सकता है कि यह भयावह है, बड़ी गड़बड़ी है, जान आजिज है। यूरुप का मध्य भाग घरिया में गल रहा है, यूरुपीय शरीर का हृदय बुरी दशा में है, खून पहुँचाने वाली रगें कट गई हैं, हाथ-पैर में लकवा हो गया है, अवयव सब बेकाम हैं और इन सब के ऊपर शरीर को स्वस्थ रखने के लिए पोषक खाद्य पदार्थ भी नहीं रहे हैं। यूरुप की दशा सोचने लायक ही है। चार प्रधान संगठन और कितने ही छोटे-बड़े उलट-पलट हो गये हैं। करोड़ों मनुष्य शासन और व्यवस्था से हीन हैं। किसी प्रकार का संगठन शेष नहीं रहा है और शरीर और आत्मा को साथ रखने के लिए खाद्य वस्तुओं का भी लाला पड़ रहा है।

जनवरी १९१८ की संधि

१११७-१८ के जाड़े के दिनों में ही यूरुप के कुछ दूरदर्शियों ने इस अवस्था का अनुमान कर लिया था। यह भी छिपा नहीं है कि मार्च १९१८ में एक तरह से युद्ध समाप्त ही हो चुका था। बसन्त समय के आक्रमण से त्रस्त होकर फ्रान्स निर्जीव हो गया था। जुलाई में जर्मन रेशटाग ने भी प्रजा के बहुसंख्यक प्रतिनिधियों की बात सर्वोपरि मानी जाय, (Majority Resoru-tion) यह प्रस्ताव पास हो गया था। अगस्त मास में पोप ने संधि और शांति के लिए अपील की थी। स्काट हाल्म में प्रतिनिधि भी एकत्र होनेवाले थे। रूस में केरन्स को असफलताओं का स्वागत करना पड़ रहा था, फ्रान्स में परशिङ्ग बिना सेना के जनरल रह गये थे। यह कहा जाने लगा था कि अब तैयारी इटैलियन रणक्षेत्र की होगी। मध्य यूरुप के राष्ट्रों में क्रान्ति की चिनगारियाँ उड़ती नजर आ रही थीं। प्रजाबल इतना जबर्दस्त हो गया था कि सम्राट चार्ल्स और काउन्ट

रक्षा करना चाहते थे। स्वराज्य पानेवाली जातियों में एक पोल्स का नाम लिया जाता था। किन्तु पोलैण्ड के साथ लुथेनिया या युक्रेनियन प्रान्तों की चर्चा न थी। मित्रदल बातें बढ़-बढ़कर कर रहा था किन्तु उसकी चलती कहीं नहीं थी। विल्सन ने देखा कुछ होना असंभव है। जर्मनी को वे त्रस्त करना चाहते थे किन्तु यह उनकी ताकत के बाहर था, संधि करने को वे तैयार थे किन्तु चाहते थे कि जर्मनी से दबना न पड़े। क्लिमैन्सो और लूडन डार्फ युद्ध का जुवा प्राणों की बाजी लगाकर खेल रहे थे। इसमें संभव था कि हारने वाले का अस्तित्व भी शेष रह जाय। रा० विल्सन इससे घबरा उठे थे और इसलिए सत्य का पीछा छोड़ कूटनीति, अन्याय और भेद का अस्त्र उन्होंने उठाया। अमेरिका सेनेट में व्याख्यान देते हुए चौथी दिसम्बर को उन्होंने कहा कि हम लोगों को आस्ट्रिया हंगरी के साम्राज्य के खण्डन या संगठन से कोई मतलब नहीं है। हम उनके निजी कार्यों में हस्तक्षेप करना नहीं चाहते। जनवरी के प्रथम या द्वितीय सप्ताह में मि० लायड जार्ज ने पार्लियामेण्ट में व्याख्यान देते हुए इन्हीं भावों को प्रकट किया। इसका साफ-साफ अर्थ था आस्ट्रिया-हंगरी को अपनी ओर आ जाने का निमंत्रण देना। ८ जनवरी को रा० विल्सन ने अमेरिकन कांग्रेस में यह कहा कि १४ बातों की बिना पर जर्मन रेशटाग के बहुसंख्यक दल से बात-चीत करने को हम तैयार हैं। इन बातों का प्रभाव आस्ट्रिया, हंगरी और जर्मनी की जनता पर पड़ा। यूरुपीय नाटक का दूसरा दृश्य यहाँ पर समाप्त होता है।

[ता० १७ मई, १९१९

यूरुपीय महाभारत नाटक का—तृतीय दृश्य

लायड जार्ज और विलसन के सफल अभिनय

[जब क्लिमैन्सो और लूडन फार्ड प्राणों की होली खेल रहे थे तब राष्ट्रपति विलसन चौंधिया गये। अपने अस्तित्व को ख़तरे से ख़ाली न समझकर अन्याय, असत्य और कूटनीति से युद्ध की गाड़ी लुक-छिपकर चलाने की कोशिश करने लगे।

मौक़ातलब लायड जार्ज ने भी शामिल बाजा बजाना शुरू किया जिसके मोहक स्वर को सुनकर आस्ट्रिया, हंगरी कैसे मुग्ध हुए—इसे पढ़िये इस विचारपूर्ण लेख में। —सम्पादक]

यूरुपीय महाभारत का तीसरा दृश्य बहुत ही कूतुहलमय, रहस्यपूर्ण और मनोरंजक है। इस समय ही में वे घटनाएँ घटी हैं जिनका संसार को पता नहीं और जिनको न जानने के कारण आज संसार यह समझने में असमर्थ हो रहा है कि विजय-वैजयन्ती फहराने वाले जर्मनी का एकदम से, बिना तनिक भी विलम्ब के, सहसा कैसे पतन हो गया! ताश के घर के समान एकदम से जर्मन साम्राज्य कैसे गिर पड़ा? १६१८ की संधि की शर्तों को देखने से यह प्रत्यक्ष है कि उस समय राजनीतिज्ञ

सुधार न कि पुनः संघटन

करना चाहते थे। किन्तु जर्मनी लूडन फार्ड की अध्यक्षता में कुछ और ही स्वप्न देख रहा था। वह यूरुप में संसार में और विशेषकर पूर्वीय देशों में जर्मन साम्राज्य स्थापित करना चाहता

था। "हेम्बर्ग से बगदाद" का स्वप्न देखना छोड़कर वह यूक्रेनियन प्रान्त से काकेशस और अफगानिस्तान की माला जपने लगा था। मित्रदल के सैनिकों की संख्या इस समय जर्मनी सैनिकों से अधिक थी। यद्यपि मार्शल फ़ाक शैम्पेन (Champagne) में हार गये थे किन्तु सैनिकों की संख्या इनके पास कहीं अधिक थी। यह सब देखकर मित्रदल ने अपनी नीति बदली। भेद-भाव को उन्होंने अपना प्रधान अस्त्र बनाया और शत्रुदल में तोड़-फोड़ करना उनको विजय का एकमात्र उपाय दिखाई देने लगा। रा० विल्सन की वक्तृताओं का—हम कह चुके हैं—असर अस्ट्रिया, हंगरी और जर्मन जनता पर पड़ा था। आस्ट्रिया हंगरी में राष्ट्रीय दल अनेक थे वे हेप्सबर्ग और कैसर के घराने के कट्टर शत्रु थे। इनका एक मासिकपत्र

नव यूरुप

के नाम से जोरों से निकल रहा था। मित्र दल ने इन्हीं राष्ट्रीय दलों के साथ मैत्री स्थापित कर आस्ट्रियन और जर्मन साम्राज्यों को भीतर से भंग करना निश्चित किया।

१९१८ में काम शुरू हुआ

आस्ट्रिया-हंगरी में बलवा कराना निश्चित हुआ। जेकोस्लाव और यूगोस्लाव यह दो प्रधान राष्ट्रीय दल वहाँ थे। इनको मिलाना और इनकी माँग को स्वीकार कर इनको अपने पक्ष में कर लेना मित्रदल के लिए एकमात्र उपाय बाकी रहा था। किन्तु यह सहज न था। जेकोस्लाव बड़े ही विद्वान् और उन्नतिशील थे। इनके पक्ष में यह एक बात और थी कि इनकी माँग जो थी उससे मित्रदल के किसी स्वार्थ को हानि नहीं पहुँचती थी। किन्तु

यूगोस्लाव का मामला

संकटमय था और अब तक बना हुआ है। इस समय सन्धि

परिषद् से जो इटली अलग हुआ उसकी जड़ उसी समय दिखाई दे गई थी। यूगोस्लाव जो प्रान्त चाहते थे वह "लंदन की गुप्त संधि" से इटली को मिल चुका था। इटली इन्हीं प्रांतों की लालच से युद्ध में सम्मिलित हुआ था। इंगलैंड और फ्रान्स ने संधिपत्र पर हस्ताक्षर किया था और वे अपने वचन के विरुद्ध काम नहीं कर सकते थे।

भीषण कसौटी

पर मित्रदल कसा जा रहा था। यूरुप और संसार के अधिवासी यह देख रहे थे कि मित्रदल जो स्वभाग्य-निर्णय, किसी भी भूमि पर कब्जा न करेंगे आदि बड़ी-बड़ी बातें कर रहा है वह कहाँ तक ठीक है। यूगोस्लावों की माँग ने यह मसला उपस्थित किया था। यदि किसी की भूमि पर कब्जा करने की आकांक्षा मित्रदल को न थी तो इटली सहज ही में लण्डन की संधि को भूल सकता था और यूगोस्लाव जो प्रदेश चाहते थे वे उसे पा जाते किन्तु यह म्याऊ का ठौर था। इटली से कहे कौन कि प्रदेशों की लालच छोड़ो और कहा न जाय और इटली राजी न हो तो, यूगोस्लाव बलवा न करेंगे। फल यह होगा कि आस्ट्रिया-हंगरी जबर्दस्त बना रहेगा। समस्या कठिन थी। इंगलैण्ड और फ्रान्स बोल नहीं सकते थे, अमेरिका बगलें झाँक रहा था। फिर कूटनीति ने काम दिया। इटली के हाथ से—उसके मुख से ग्रास निकालने की बात सोची गई। इटैलियनों से ही कहा जाने लगा कि मित्रदल और आस्ट्रियन राष्ट्रीय दलों में वे मैत्री स्थापित करा दें। चाल चल गई। इटैलियन पार्लामेण्ट के एक प्रधान सदस्य डा० टारी और यूगोस्लाव नेता डा० ट्रम्बरिक के बीच ७ मार्च १९१८ को एक समझौता हो गया। इटली के कुछ लिबरल दल के मनुष्य भी यह देख रहे थे कि यदि यूगोस्लाव राजी नहीं किये जाते तो मित्रदल कभी जीत न सकेगा। ये डा० टारी के

सहायक हो गये। फल यह हुआ कि अप्रैल में इटली की राजधानी रोम में आस्ट्रिया-हंगरी की त्रस्त जातियों की एक कांग्रेस हुई। प्रस्ताव यह पास किया गया कि अस्ट्रिया-हंगरी का अंग-भंग न किया जाय। इटली के प्रधान सचिव ने कांग्रेस को साधुवाद कहा। यहाँ पर एक बात ध्यान में रखने की यह है कि इटली ने राष्ट्र की हैसियत से या सरकारी तौर पर कुछ नहीं कहा था और न लंदन की संधि पर उसने हड़ताल ही फेरी थी। मई मास के अन्त में अमेरिका या रा० विल्सन ने जेकोस्लाव और यूगोस्लावों की राष्ट्रीयता स्वीकार कर ली किन्तु भाषा गोलमोल और अस्पष्ट थी। जून मास की वार्सेल्स की मित्रराष्ट्रों की सभा में बैरन सोनिनो (इटैलियन प्रतिनिधि) ने यह साफ-साफ कह दिया कि यूगोस्लावों की माँग को स्वीकार करने को वे तैयार नहीं। उन्होंने अमेरिका मि० लासिङ्ग को गोलमोल भाषा में शरण ली थी। इधर आपस में झगड़ा हो रहा था, उधर यूगोस्लाव और जेकोस्लाव सेनाएँ, जो अब तक आस्ट्रिया की तरफ से लड़ रही थीं, आस्ट्रिया के खिलाफ हो गई। मित्रदल की कूटनीति का यह फल हुआ। एक तरफ यह हुआ दूसरी तरफ जून के अन्तिम सप्ताह में मि० लान्सिंग ने साफ शब्दों में यह घोषणा की कि यूगोस्लाव और जेकोस्लावों को स्वतंत्र करना उनका राष्ट्र-निर्माण करना, अमेरिका का युद्ध में सम्मिलित होने का एक मुख्य उद्देश्य है।

अगस्त मास में लार्ड नार्थ क्लिफ ने एक बार फिर प्रयत्न किया कि बैरन सोनिनो यूगोस्लाव की राष्ट्रीयता स्वीकार कर लें। इसका फल यह हुआ कि इसी में एक भारी आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। इसी समय में इंगलैण्ड और अमेरिका ने जेकोस्लावों का स्वतंत्र राज्य स्वीकार कर लिया। एक ओर यह हुआ, दूसरी ओर इटली ने यूगोस्लावों की राष्ट्रीयता और उनकी माँग को स्वीकार कर लिया।

उपर्युक्त बातों से संधि-परिषद् से आजकल रोज जो इटली और रा० विल्सन से मन मुटाव के तार आते हैं उनको समझने में बहुत सहायता मिलती है। पाठकों को याद होगा कि इटली "फायूम" का नाम लेकर संधि-परिषद् से अलग हो गया था। फायूम के बन्दरगाह पर वह अपना कब्जा चाहता है। इटली "लंदन की संधि" की दोहाई देता है। वह यह भी कहता है कि रा० विल्सन की चौदह शर्तों के अनुसार फायूम उसे मिलना चाहिए। इंगलैण्ड और फ्रांस इटली के विरुद्ध कुछ कह नहीं सकते किन्तु इंगलैण्ड दबी जबान यह कहता था कि लण्डन की संधि में अन्य प्रदेशों के देने का जिक्र है किन्तु फायूम का नाम कहीं नहीं है। इटली कहता है—फायूम हम लेंगे ही। फ्रांस अपने हस्ताक्षर की दोहाई देता है। रा० विल्सन सिद्धान्त और अपने वचन का दम भरते हैं। इटली रूठ कर चला गया है। बैरन सोनिनो का खूब धूमधाम से स्वागत हुआ। फ्रांस और इंगलैण्ड अब इटली को प्रसन्न करने पर तुल गये हैं। इंगलैण्ड और फ्रांस ने इटली से कहा है कि फायूम अभी १५ वर्ष तक तुम्हारे आधीन रहेगा किन्तु राष्ट्र-संघ उसका मालिक रहेगा। १५ वर्ष में स्लावों के लिए एक दूसरा बन्दरगाह तैयार हो जायगा उस समय फायूम का मालिक इटली बना दिया जायगा। व्यावहारिक दृष्टि से इटली को मुँह माँगी मुराद मिली, वह राजी हो गया है और संधि-परिषद् में सम्मिलित होने के लिए तैयार हुआ है। किन्तु महाभारत का तीसरा पर्दा गिरता है वहाँ पर जहाँ पर यूगोस्लाव आस्ट्रिया के विरुद्ध खड़े हो गये। आस्ट्रिया और जर्मनी पर इसका प्रभाव क्या पड़ा यह चौथे दृश्य की बात है और उसका पर्दा किसी अगले अध्याय में हम उठा देंगे।

ता० २४ मई, सन् १९१९

यूरुपीय महाभारत का चौथा दृश्य

मित्रराष्ट्रों की गोमुख-व्याघ्रता

[विजय का उन्माद विजया के नशे से भी अधिक प्रमत्त बना देता है। विजयी मित्र-राष्ट्रों ने सहायक और विजित राष्ट्रों के साथ कैसी गोमुख-व्याघ्रता की ? परिणाम यह हुआ कि "बोलशेविज्म" का प्रचार और प्रभाव बढ़ने लगा।

प्रस्तुत लेखांश में विद्वान् लेखक ने मित्र-राष्ट्रों की कथनी-करनी का भण्डाफोड़ करते हुए उसके चरम-परिणाम की जो अकाट्य भविष्य-वाणी की थी वह आज भी तरोताज़ी है। इस लेखांश में आप 'बोलशेविज्म' के सिद्धांतों और स्वरूप की मार्मिक व्याख्या समझेंगे। —सम्पादक

यूरुप में विप्लव की तैयारियाँ

"लुत्फो करम यह सब है दिखाने के वास्ते।
मैं जानता हूँ आपकी आदत कुछ और है ॥
होता जो एक जाहिरो बातिन तो खूब था।
सूरत कुछ और है तेरी सीरत कुछ और है ॥
तरजुमाने दिल जबाँ है खाम नक्काले जबाँ।
बात जो तकरीर में है वह कहाँ तहरीर में ॥
रमूजे सल्तनत की हाकिमाने वक्त समझते हैं।
इशारा कुछ है आकिल से तो इमाँ कुछ है जाहिल से ॥"

यूरोप विप्लव से खेलने और दिल बहलाने के लिए बेतहाशा दौड़ा चला जा रहा है, क्योंकि उसके राजनीतिज्ञ यह नहीं समझ सकते हैं कि उनको क्या आशा करनी चाहिए, किस बात की

उनको आवश्यकता है? और इसलिए भी क्योंकि उनमें इतना साहस नहीं कि वे भविष्य में जैसा संगठन होना चाहिए उस चित्र की ओर निहार सकें। संधि-परिषद् का एकमात्र कार्य और सर्वप्रथम कार्य यह था और है कि यूरुप के निवासियों की भूख की मार से वह रक्षा करे, उनको भोजन दे, उनको काम में, उद्योग-धन्धे में लगा दे और यूरोप के निवासियों में प्रेम का प्रसार करे। इसकी सफलता में जो बातें अड़चन डालती हैं वे राष्ट्र विप्लव के लिए मार्ग साफ कर रही हैं। साधारण दैनिक जीवन और अवस्था स्थापित करने में यूरुप की गवर्नमेंटों के मार्ग में जो अड़चनें डाली जा रही हैं और जिनके कारण से यूरुप के राष्ट्र अपनी अध्यक्षता खोते जा रहे हैं वह सब उन लोगों को प्रोत्साहित करता है। जो कहते हैं कि वर्तमान सरकारों का अन्त निकट है। वे कसौटी पर कसी गईं और खरी नहीं उतरी और इनसे संसार की भलाई नहीं हो सकती। यह हो रहा है वर्तमान गवर्नमेंटों और शासकों से यूरुपीय भाइयों का विश्वास उठता जा रहा है किन्तु राजनीतिज्ञ और वहाँ के धनी जो शक्ति के पूजारी हैं जो दूसरों के माथे मौज कर रहे हैं और करना चाहते हैं इन बातों की परवाह न कर अपनी धुन में लगे हुए हैं। एक महाभारत समाप्त नहीं हो पाया है और उसी रंगशाला में एक दूसरा महाभारत शुरू हो गया है। पहला महाभारत जो स्थगित हो गया है और जिसकी शर्तों पर विचार हो रहा है, संसार-व्यापी होते हुए भी पूर्णरूप से संसारव्यापी नहीं था किन्तु अब जो थिएटर के भीतर थिएटर शुरू हुआ है वह पूर्ण रूप से संसारव्यापी होगा। यह महाभारत रुपयेवालों, शक्ति के पूजा-रियों और श्रमजीवियों के बीच हो रहा है। रूस, जर्मनी, इंगलैण्ड, फ्रांस सभी देशों के श्रमजीवी धीरे-धीरे एक हो रहे हैं, दूसरी ओर लक्ष्मी के कृपापात्र जो वास्तव में इंगलैण्ड, फ्रांस,

इटली, अमेरिका और सभी सरकारों के प्रभु हैं, अपनी सत्ता को अक्षुण्ण बनाए रखने का प्रयत्न कर रहे हैं। संधि-परिषद् में सम्मिलित राष्ट्र पूँजीवालों के हाथ में कठपुतली की भाँति नाच रहे हैं और स्वार्थ से वे प्रेरित हैं और स्वार्थ और साम्राज्य विस्तार की वेदी पर संसार की भावी शान्ति का बलिदान कर रहे हैं। संसार की इस स्थिति में

लूट के बँटवारे

के सिद्धान्त के प्रयोग और यूरुप की काट-छाँट के कारण उसके पोढ़-पोढ़ से खून बह रहा है, सरासर पागलपन है। इसी से त्रस्त होकर बोलशेविज्म का जोर यूरुप में बढ़ता जा रहा है किन्तु यूरुपीय राजनीतिज्ञ अपनी धुन में लगे हुए हैं। हमने पिछले अध्याय में लिखा था कि मित्रराष्ट्रों ने आस्ट्रिया-हंगरी, जर्मनी आदि में भीतरी गड़बड़ और विप्लव कराना निश्चित किया था और उन लोगों ने यूगोस्लावों और जेकोस्लावों को उभार कर तथा उनको एक स्वतंत्र राष्ट्र का लालच देकर आस्ट्रिया के विरुद्ध खड़ा कर दिया। स्लाव फौज आस्ट्रिया के शत्रुओं का मानमर्दन करने के स्थान पर आस्ट्रिया पर चढ़ दौड़ी। यूरुपीय महाभारत के

नाटक का चौथा दृश्य

यहीं से आरम्भ होता है। अमेरिकन और इंगलैण्ड की इस घोषणा को सुनकर ही वे राष्ट्र जेकोस्लाओं का स्वतंत्र राष्ट्र स्वीकार करते हैं, वीयना में खलबली मच गई। इसका फल यह हुआ कि आस्ट्रिया ने संधि के प्रस्तावों को स्थगित कर दिया। आस्ट्रिया ने अगस्त मास में ही सन्धि की बातों को शुरू करना निश्चय कर लिया था, जर्मनी की अनुमति भी उसने इस सम्बन्ध में प्राप्त करली थी। संधि का मसौदा भी वास्तव में तैयार था, किन्तु अमेरिका और इङ्गलैण्ड की चाल को देखकर, जिसका वास्तव में अर्थ आस्ट्रिया-हंगरी के टुकड़े करना था सिवा चुप रह जाने के उनके

लिए कोई उपाय न था। सन्धि का मसौदा बना था। डा० विल्सन की जनवरी की वक्तृता के आधार पर जिसमें उन्होंने आस्ट्रिया हंगरी की साफ-साफ अखण्डता स्वीकार की थी और कहा था कि वे आस्ट्रिया हंगरी के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप करना नहीं चाहते किन्तु जेकोस्लाओं की स्वतंत्रता स्वीकार करने से दशा बिलकुल विपरीत हो गई थी और सन्धि का मसौदा बेमानी हो गया था। दशा और बिगड़ती देखकर आस्ट्रिया ने विवश होकर सितम्बर के दूसरे या तीसरे सप्ताह में सन्धि का वही पुराना मसौदा पेश किया। एक ओर यह हो रहा था, दूसरी ओर मित्रदल बलगेरिया में भी कूटनीति का जाल बिछा रहा था। अभी तक साफ तौर से यह नहीं मालूम हुआ है कि मित्रदल बलगेरिया में भी कूट-नीति का जाल बिछा रहा था। अभी तक साफ तौर से यह नहीं मालूम हुआ है कि मित्रदल ने बलगेरिया में कौन-कौन-सी चालें चलीं किन्तु बलगेरिया के पतन से रोमानियाँ से हंगरी तक का रास्ता साफ हो गया।

हंगरी संकट में

पड़ गया और इसी समय में यूक्रेन (Ukraine) ने बगावत का झंडा उठाया। एक ओर यह हुआ दूसरी ओर अमेरिकन सेना अरगान जंगल और म्यूज नदी के बीच जर्मन सेना पर विजय पाई। युद्ध का उद्देश्य यह था कि लूडन डार्फ की सेना म्यूज नदी का ओर न रह सके और वहाँ से सुरक्षित स्थानों की मोर्चाबन्दी की छाया में बैठकर सन्धि की शर्तें न करें। अमेरिकन सेना की विजय होते ही रा० विल्सन की २७ सितम्बरवाली महत्त्वपूर्ण वक्तृता हुई। अमेरिकन सेना की लगातार फिर विजय होने से

लूडन डार्फ ने सन्धि

का प्रस्ताव आरम्भ किया और प्रिन्स मैक्स की गवर्नमेन्ट ने युद्ध

स्थगित कर दिया। प्रिन्स मेक्स ने वही किया जो आस्ट्रिया कुछ सप्ताहों के पहिले कर चुका था अर्थात् उनके सन्धि के प्रस्ताव भी रा० विल्सन की जनवरी की स्पीच के आधार पर स्तम्भित थे। यह ध्यान में रखने की बात है कि प्रेसीडेन्ट विल्सन की चौदह बातों की बिना पर ही युद्ध स्थगित हुआ। किन्तु अब जो सन्धि की शर्तें हो रही हैं वे बिलकुल दूसरी बिना पर निर्धारित हैं। जर्मनी के युद्ध के स्थगित करते ही मित्रदल ने यह समझ लिया कि अब जर्मनी में कुछ नहीं रहा, वह हीन हो गया और उनकी बातों का रुख बदलने लगा। आरम्भ में कहा जाता था कि क्षति-पूर्ति न कोई लेगा न कोई देगा। किसी की भूमि पर कोई कब्ज़ा न करेगा, अब ये बातें हवा हो गई हैं। इसका

कारण क्या है?

सबसे पहिला कारण है विजय का मद, अभिमान बदले की कभी न शान्त होनेवाली पिपासा, स्वार्थ, साम्राज्य-विस्तार की लालसा और इसके साथ ही साथ यह भाव कि जर्मनी ऐसा पीस डाला जाय कि फिर वह कभी सर न उठा सके, हमारे मार्ग में कोई सङ्कट न हो और हम संसार के निर्देशक या निर्णायक हो जायें। प्रभुओं, शक्ति के पुजारियों और पूँजीवालों की इच्छा यह है क्योंकि वे अपनी शक्ति खोना नहीं चाहते, क्योंकि वे नहीं चाहते कि वास्तव में प्रजातन्त्र संसार में स्थापित हो। साधारण प्रजा के साधारण स्थिति के प्रतिनिधि राजकाज का काम चलायें। क्योंकि ये प्रतिनिधि प्रजा के हित के कानून बनावेंगे और रुपयेवाले बैठे-बैठे मोटे नहीं हो सकेंगे। जनता दूसरी ही बात चाहती है। जनता यह जानती है कि अन्याय, सख्ती और जुल्म का नतीजा यह होगा कि शत्रुदल बाद में बदला अवश्य लेगा, मरना पड़ेगा साधारण मनुष्यों को। अमीर पूँजीवाले युद्ध से और धनी

होंगे और उनको कोई क्षति न उठानी पड़ेगी। इसलिए रूस की जनता में

बोलशेविज्म

का शीघ्रता से प्रचार हो गया। बोलशेविज्म है क्या ? उसका उद्देश्य क्या है, यह सब कहना कठिन है। किन्तु यह निर्विवाद सत्य मालूम होता है कि बोलशेविक यह चाहते हैं कि संसार में मान उन्हीं का हो, शासन उन्हीं के हाथ में हो और राष्ट्रों की नीति वे ही तय करें जो उत्पादक हैं, जो श्रमजीवी हैं और परिश्रमी हैं। साम्राज्यवादी विजयमत्त राष्ट्रों या यों समझिये कि पूँजीवालों के मार्ग में बोलशेविज्म का पहाड़ रूस ने एकदम खड़ा कर दिया और यहीं पर नाटक का चतुर्थ दृश्य समाप्त होता है। इस काँटे को निकाल बाहर करने के लिए पूँजीवालों ने क्या क्या किया ? यूरुप के पुनः संगठन पर इसका कैसा प्रभाव पड़ा और कूटनीति ने इसके कारण कौन-कौन से रूप बदले यह किसी अगले अध्याय में दिखलाने की चेष्टा करूँगा।

[ता० ३१ मई, सन् १९१९

यूरुपीय महाभारत का पाँचवाँ दृश्य

यूरुपीय राष्ट्रों की ३×५

[रूस और फ्रान्स की क्रान्तियों की तुलनात्मक विवेचना करते हुए राजनीतिज्ञ, भविष्यवक्ता लेखक ने यूरुप के इतिहास को एक सिरे से दूसरे सिरे तक दुहरा डाला। नूतन राष्ट्रों की स्थापना और स्वास्थ्य-कर घेरों का रहस्य प्रकट करते हुए यूरुप की राजनीति का जो सिंहावलोकन किया उससे यही परिणाम निकाला "कि यूरुप अपने कर्मों का फल भोग रहा है। वियना की सन्धि-परिषद् में जो उसने किया था, उसका फल अब वह भोग रहा है अब जो सन्धि-परिषद् में वह कर रहा है, इसका भी फल वह शीघ्र भोगेगा।"

कहना न होगा चाणक्य का-सा मस्तिष्क रखनेवाले विद्वान् लेखक ने जो कुछ कहा वह तथ्य और तत्त्व से गर्भित था और आज हमारे सामने प्रत्यक्ष है। —सम्पादक]

नूतन राष्ट्रों के स्थापित करने का रहस्य

परदे के उठते ही हम देखते हैं कि रूस में बोलशेविज्म का दौर-दौरा है और धीरे-धीरे वह समस्त यूरुप में फैल रहा है। यह संसार में एक नूतन शासनक्रम स्थापित करने का यत्न था। पराकाष्ठा के साम्यवादी सिद्धान्त ही बोलशेविज्म के आधार-स्तम्भ थे। इससे संसार में निम्न श्रेणी के पुरुषों का या साधारण जनता का साम्राज्य स्थापित होता, पूँजीवाले और अमीरों का मान जाता रहता। शासन में भाग वे ही ले सकते हैं जो उत्पादक हैं,

श्रमजीवी हैं और इसीसे पूंजीवालों ने इसका विरोध करना निश्चय किया। युद्ध के भीतर युद्ध, नाटक के भीतर नाटक शुरू हुआ। जारडम के अन्त पर यदि मित्रदल रूसियों की सहायता करता तो बहुत कुछ संभव था कि रूस में कोई स्थायी सरकार स्थापित हो जाती किन्तु यह होना नहीं था। इंगलैण्ड तथा फ्रांस युद्ध के आरम्भ के समय जार के मित्र थे। जार की सहायता कर उसकी शक्ति को बढ़ाकर रूस और संसार में वे जारडम की प्रभुता और शक्ति को बढ़ा रहे थे।

उनको संसार से निरंकुश शासन और फौजीपन उठाने की फ़िक्र थी किन्तु इसी निरंकुशता और फौजीपन को वे रूस में शक्तिशाली बना रहे थे। लोग इस पर टीका-टिप्पणी कर रहे थे, कोरी-कोरी बातें भी सुना रहे थे किन्तु उस समय स्वार्थ इसमें था कि रूस साथ रहे नहीं तो फ्रांस को कुचलने और इंगलैण्ड में धावा करने में जर्मनी को कुछ समय न लगता। रा० विल्सन युद्ध में रूस के कारण ही नहीं सम्मिलित होते थे किन्तु इसकी भी कुछ अधिक परवाह मित्र-राष्ट्रों को न थी। रूसी अत्याचारों से त्रस्त थे उन्होंने बलवा किया और

जारडम का अन्त हुआ

इंगलैण्ड ने मुक्तकण्ठ से प्रजा की पीठ ठोंकी। जार के लिए आँसू बहाने वाला कोई नहीं दिखाई दिया। जारडम के साथी स्वतंत्रता के उपासकों के साथी हो गये। जार के रक्त के चिन्ह भी पृथ्वी पर न सूख पाये होंगे कि जार के मित्र जार को सिंहासन च्युत करने वालों के मित्र बन गये। इंगलैण्ड नवरूस की बलैया लेने लगा। अमेरिका भी क्षेत्र में आ गया। अमेरिका स्वार्थ से या परमार्थ से युद्ध में सम्मिलित हुआ है, वह क्या चाहता है, इतने दिनों वह अलग क्यों रहा और फिर वह

सम्मिलित क्यों हुआ, इन सब बातों पर प्रकाश डालने की चेष्टा किसी अगले अध्याय में करेंगे। जब तक यह तय नहीं हो लेता तब तक पाठक यही समझे रहें कि रूस के कारण अमेरिका अलग रहा और जारडम के अन्त के साथ ही वह मैदान में आ गया। मित्र-राष्ट्रों ने नवरूस का स्वागत किया था। उनका कर्त्तव्य था कि क्रांतिकारियों को पूरी सफलता लाभ करने में सहायता देते। निरंकुशता और फौजीपन के शत्रुओं का धर्म यही था किन्तु यह

नवरूस नई राह

संसार को दिखलाने को उतावला था, वह कूटनीति, चालबाजियों, गुप्त संधियों, दूसरे के जमीन हड़पने आदि के विरुद्ध था। उसमें नवीन मतावलम्बियों का जोश था। इंगलैण्ड फ्रांस उसका कैसे साथ दे सकते थे? इतिहास अपने को दोहराने लगा। हम पहले संसारसंकट (३) में दिखा चुके हैं कि संधि-परिषद् आदि बातें पहिले भी हो चुकी हैं और वास्तव में इस समय यूरुप

इतिहास का पुराना पाठ

पढ़ रहा है। आज इसी बात का एक दूसरा नमूना भी देख लीजिए। आज जो रूस में हो रहा है और रूस के साथ जैसा व्यवहार किया जा रहा है, बिलकुल उसी तरह से पहिले फ्रांस के साथ भी हो चुका है। फ्रांस में क्रांति हुई थी और क्रांति बड़े जोरों की थी। क्रांति बिलकुल ऐसी ही थी जैसी कि आज रूस में है। इन क्रांतियों में एक बात ध्यान में रखने की है और वह यह कि यह उस शक्ति के सहारे चलती है जो आन्तरिक जलन के कारण पैदा होती है। प्रजा का त्रस्त होकर स्वतंत्र होने के लिए उद्योग करना, आपस की मारकाट इन क्रांतियों के आधार होते हैं। फ्रांस में लेजिस्लेटिव एसेम्बली को शक्तिशाली बनाने के लिए स्टेट्स जन-

रल (States General) भस्मीभूत किया गया, काम चलता नज़र न आता दिखाई देने पर लेजिस्लेटिव एसेम्बली की चिता पर कान्वेशन और कम्यून का सिंहासन जमाया गया। अन्त में कान्वेशन की अन्त्येष्ठि क्रिया पर (Committee of Public Safety) कमेटी आफ़ पब्लिक सेफ़्टी—सार्वजनिक रक्षा कमेटी स्थापित की गई। रूस में भी ऐसी ही एक के बाद दूसरी संस्थाएँ स्थापित हुईं और कमेटी आफ़ पब्लिक सेफ़्टी का स्थान बोलशेविज्म को प्राप्त हुआ है। फ्रांस में बर्गनियाड को डैन्टन के सामने सर झुकाना पड़ा और डैन्टन को बाद में लोब्सपीरो के सामने दब जाना पड़ा। ठीक उसी तरह से आधुनिक रूस में लाफ को केरन्सकी के सामने और केरन्सकी को लेनिन के सामने से हट जाना पड़ा है। यह ऊपरी बाते हैं किन्तु क्रांतियों पर जिन्होंने तनिक भी विचार दिया है उनसे यह छिपा नहीं कि आन्तरिक अत्याचार, गड़बड़, जलन यह सब क्रान्ति के उतपत्ति के कारण मात्र हैं। ये उसमें शक्ति भी प्रदान करते हैं किन्तु आन्तरिक गड़बड़ और शक्ति का (Explosive) विस्फोटक का रूप धारण करना केवल बाहरी दबाव पर निर्भर होता है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि फ्रेन्च क्रान्ति केवल आस्ट्रिया और जर्मनी के हस्तक्षेप के कारण भीषण रूप धारण कर अपने पथ से विचलित हो गई और इस प्रकार से अपने उद्देश्य से दूर हो गई। ऐतिहासिकों का यह भी कहना है कि इंगलैण्ड ने फ्रान्स को कुचलने में आस्ट्रिया और जर्मनी का साथ देकर फ्रान्स में Reign of Terror भीषण रक्तपात और भय के साम्राज्य को जन्म दिया। बाहर वालों के दबाव से उनकी चालबाजियों और कूटनीतियों के कारण अच्छे से अच्छे काम बुरे रूप धारण कर लिया करते हैं। क्रान्तियों के इतिहास का यह एक दुःखान्त सत्य है। संसार माने या न माने किन्तु यह एक

निर्विवाद सत्य है कि आधुनिक संसार उसी समय एक नूतन पथ पर अग्रसर हुआ। जिस समय कि इंगलैण्ड ने बर्क की सलाह में आकर फ्रान्स की सहायता करना छोड़ क्रान्ति के शत्रुओं आस्ट्रिया और जर्मनी का साथ दिया। उस समय के

फ्रान्स और आधुनिक रूस

की स्थिति एक समान है और १७६४ और १६१६ के मित्रदल के उद्देश्यों में भी बहुत कुछ समानता है। रूसी क्रान्ति की भाँति फ्रेन्च क्रान्ति का भी समस्त यूरुप और विशेषकर इंगलैण्ड में बड़ी धूम से स्वागत हुआ था। आज की भाँति उस समय में भी कहा गया था कि स्वतंत्रता की ओर यह मानव समाज का अग्रसर होना शुभकर होगा। फ्रान्स ने यहाँ तक कहा था कि फ्रान्स के स्वतंत्र प्रजातंत्र को यूरुपीय शासक-मण्डल में मिला लिया जाय और बराबर वाले के समान उसका आदर किया जाय। किन्तु हुआ कुछ नहीं। मित्रता का कहना ही क्या, इंगलैण्ड ने फ्रान्स से पूरी शत्रुता की। अन्य राष्ट्रों के हस्तक्षेप के कारण फ्रान्स में Reign of Terror रक्तपात और मारकाट का साम्राज्य स्थापित हो गया। नेता पदच्युत और पतित हुए। मानव-समाज में उनको कहीं स्थान न मिला और फ्रान्स में

रक्त की नदियाँ

बह गई जिस तरह बर्क Regicide Peace राजा की हत्या करनेवालों से सन्धि न स्थापित करने का चीत्कार मचा रहे थे उसी तरह से आज फ्रांस के M. Pinchon मोशिए पिंचन बोलशेविकों से दूर रहने की दोहाई दे रहे हैं। जिस प्रकार अन्य राष्ट्रों के हस्तक्षेप के कारण फ्रान्स को लड़ने के लिए विवश होना पड़ा था और फ्रान्स का नूतन राष्ट्र डाँवाडोल था वही दशा रूस की हो रही है। उस समय राष्ट्रों के हस्तक्षेप के

निर्विवाद सत्य है कि आधुनिक संसार उसी समय एक नूतन पथ पर अग्रसर हुआ। जिस समय कि इंगलैण्ड ने बर्क की सलाह में आकर फ्रान्स की सहायता करना छोड़ क्रान्ति के शत्रुओं आस्ट्रिया और जर्मनी का साथ दिया। उस समय के

फ्रान्स और आधुनिक रूस

की स्थिति एक समान है और १७९४ और १९१९ के मित्रदल के उद्देश्यों में भी बहुत कुछ समानता है। रूसी क्रान्ति की भाँति फ्रेन्च क्रान्ति का भी समस्त यूरुप और विशेषकर इंगलैण्ड में बड़ी धूम से स्वागत हुआ था। आज की भाँति उस समय में भी कहा गया था कि स्वतंत्रता की ओर यह मानव समाज का अग्रसर होना शुभकर होगा। फ्रान्स ने यहाँ तक कहा था कि फ्रान्स के स्वतंत्र प्रजातंत्र को यूरुपीय शासक-मण्डल में मिला लिया जाय और बराबर वाले के समान उसका आदर किया जाय। किन्तु हुआ कुछ नहीं। मित्रता का कहना ही क्या, इंगलैण्ड ने फ्रान्स से पूरी शत्रुता की। अन्य राष्ट्रों के हस्तक्षेप के कारण फ्रान्स में Reign of Terror रक्तपात और मारकाट का साम्राज्य स्थापित हो गया। नेता पदच्युत और पतित हुए। मानव-समाज में उनको कहीं स्थान न मिला और फ्रान्स में

रक्त की नदियाँ

बह गईं जिस तरह बर्क Regicide Peace राजा की हत्या करनेवालों से सन्धि न स्थापित करने का चीत्कार मचा रहे थे उसी तरह से आज फ्रांस के M. Pinchon मोशिए पिंचन बोलशेविकों से दूर रहने की दोहाई दे रहे हैं। जिस प्रकार अन्य राष्ट्रों के हस्तक्षेप के कारण फ्रान्स को लड़ने के लिए विवश होना पड़ा था और फ्रान्स का नूतन राष्ट्र डाँवाडोल था वही दशा रूस की हो रही है। उस समय राष्ट्रों के हस्तक्षेप के

कारण फ्रान्स में नेपोलियन का सैनिक आधिपत्य स्थापित हो गया था, आज भी बहुत कुछ सम्भव है कि रूस और जर्मनी में कोई सैनिक नायक बन बैठे।

यह ऐतिहासिक सत्य है किन्तु इससे स्वार्थ को धक्का पहुँचता है इस कारण संसार के "हम" में चूर राष्ट्रों को इसकी चिन्ता नहीं। वे अपने काम में लगे हुए हैं, वे क्रान्तिकारियों को दबाना चाहते हैं, वे चाहते नहीं कि उनको सफलता प्राप्त हो क्योंकि रूस की क्रान्ति की सफलता का प्रभाव समस्त यूरुप पर पड़ेगा, इसका अर्थ यह होगा कि जो इस समय शक्तिशाली हैं उनकी सत्ता जाती रहेगी। समस्त यूरुप में शासन-क्रम का नूतन संस्कार होगा। मित्रराष्ट्रों की दृष्टि में यह भयावह है और इसीलिए उन लोगों ने नव-रूस को नेस्तनाबूद करना निश्चित किया है। यह तय हुआ कि मित्र-राष्ट्र रूस पर चढ़ाई कर दें और उसे कुचल डालें। सेनायें चढ़ दौड़ीं किन्तु कुछ ह समय में मालूम हुआ कि यह सहज नहीं। एक नई अड़चन यह भी पड़ी कि अमेरिकनों को यह भी पसन्द न था कि रूस के सुधार के लिये पाँच सात लाख अमेरिकन नवयुवक रूस के विस्तृत बर्फिस्तान में दस वर्षों तक पड़े रहे यह देखकर कि अमेरिकन सेना रूस की सैर नहीं करना चाहती और अङ्गरेजी और फ्रेञ्च।सेना अकेले रूस में बहुत दिनों तक पुलीस का काम नहीं कर सकती। विवश होकर राजनीतिज्ञों ने एक नई चाल चलना आरंभ किया।

नव राष्ट्रों की उत्पत्ति का रहस्य

जिस समय कहीं अग्नि लगती है और उसका फैलना बन्द करना जरूरी होता है तो किया यह जाता है कि आस-पास के

स्थानों से उसका लगाव तोड़ दिया जाता है। इसी तरह से जब पानी का विस्तार या बहाव रोकना होता है तो बाँध (Dawn) खड़े किये जाते हैं जिसमें पानी आगे नबढ़ने पावे। मित्र-राष्ट्रों में इसी तरह से बोलशेविज्म के प्रवाह को रोकना निश्चित किया। उसको समूल नष्ट करना सहज न था यद्यपि रूस के संहार के लिए मि० चर्चिल इस समय भी दस लाख की सेना तैयार कर रहे हैं। प्रवाह रोकने के लिए या विषैली हवा के झोकों को दूर रखने के लिए जिसमें उनका असर और न फैले Sanitary Cardon

स्वास्थ्यकर घेरे

के सिद्धान्त की शरण ली गई। तय हुआ कि बोलशेविक रूस कम्यूनिस्ट हंगरी और स्पोर्टसिस्ट जर्मनी के चारों ओर स्वास्थ्य-कर घेरे अर्थात् छोटे-छोटे स्वतंत्र प्रजातंत्र स्थापित किये जायँ। साथ ही साथ राइन प्रदेश का एक बाँध बनाया जाय और हालैण्ड और बेल्जियम के कुछ खंडों को तोड़-फोड़ कर एक बाँध उधर भी डाल दिया जाय। इन बाँधों या घेरों की रक्षा का भार इङ्गलैण्ड और अमेरिका अपने ऊपर ले, दिखलाने को राष्ट्र-संघ का ढकोसला रहे किन्तु वास्तव में अमेरिका और इङ्गलैण्ड की सन्धि स्थापित हो। यह दोधारी तलवार की नीति है। इन राष्ट्रों के निर्माण से जर्मनी, आस्ट्रिया-हंगरी और रूस का पहिले ही खंडन होगा और इस तरह से वे कमज़ोर होंगे, दूसरे यदि वे लड़ने को आमादा होंगे तो पहिली बार स्वतंत्र छोटे-छोटे राष्ट्र रोकेंगे, जिनको स्वतंत्रता प्यारी है और इस तरह से इङ्गलैण्ड और फ्रान्स को पहिले ही रणक्षेत्र में न आना पड़ेगा। एक दूसरी बात इससे यह भी होगी कि फ्रान्स, इटली आदि की सीमा जर्मनी, रूस आदि से भिड़ी न होगी कि एकदम उन पर आक्रमण

करना सहज हो जाय। इसी सिद्धान्त की सिद्धि के लिए यूरुप में पोलैण्ड, जेकोस्लाव, यूगोस्लाव, ग्रेटर, रोमानिया आदि के स्वतंत्र राष्ट्र स्थापित किये जा रहे हैं। राजनीति में उदारता, सत्य, प्रेम और न्याय को जो स्थान देते हैं वे समझें कि रा० विल्सन उदारतावश, छोटी जातियों की हीनावस्था पर तरस खाकर या स्वतंत्रता के प्रेम से छोटी जातियों के उद्धार के लिए ये राष्ट्र कायम कर रहे हैं किन्तु हम तो यही जानते हैं कि स्वार्थ की पूजा सर्वोपरि है। इसी कारण से सन्धि की शर्तें नित्यप्रति हवा के झोंके के साथ बदलती रही हैं। नाटक के प्रत्येक दृश्य में एक नूतन सिद्धान्त को जन्म मिला है और रा० विल्सन की चौदह बातें स्मरण-शक्ति की परीक्षा के लिए रह गई हैं। इसीलिए "हम किसी की भूमि पर कब्जा न करेंगे" "साम्राज्यों का खंडन न होगा," और "क्षतिपूर्ति की रकम न ली जायगी" यह बातें अब नहीं सुनाई देती हैं। आरम्भ में केवल यह कहा जाता था कि जर्मनी से अलसेस-लोरेन लिया जायगा किन्तु अब रोज़-बरोज़ एक नये प्रदेश के स्वतंत्र करने की अनिवार्य आवश्यकता प्रकट हो रही है। अस्तु, इस नूतन सिद्धान्त के सम्बन्ध में हम इतना ही कह देना चाहते हैं कि यह मूर्खतामय है, हानिकर सिद्ध और स्थायी नहीं हो सकता। जिसे यूरुप की आभ्यन्तरिक दशा का कुछ भी ज्ञान है वह सहज ही में समझ सकता है कि जर्मनी और रूस की भीषण क्रान्तियों में ये छोटे-छोटे राष्ट्र पिस जायेंगे और इनका कहीं निशान भी न दिखाई देगा। इसके सिवा ये छोटे-छोटे राष्ट्र बड़े-बड़े साम्राज्यों के टुकड़े हैं, इनमें जो मनुष्य इस समय प्रधान हो रहे हैं और जिनको कि मित्रराष्ट्र अँगुली के इशारे पर नचा रहे हैं पुराने विचारों के कट्टर साम्राज्यवादी हैं, कूटनीति, स्वार्थ की पूजा, गुप्त सन्धियों का करना इनका पेशा है, ऐसे

संकट के समय में ये नूतन राष्ट्रों की नौका को खेकर नहीं ले जा सकते। तीसरे ये सब आपस में इसी समय में लड़ रहे हैं। सभी सीमा प्रदेशों पर किसी न किसी रूप में मारकाट जारी ही है और इन राष्ट्रों का अस्तित्व भी उसी समय तक है तब तक कि राइन प्रदेश में अंग्रेजी और फ्रेंच सेनाएँ पड़ी रहेंगी। यह बहुत दिनों तक नहीं चल सकेगा। जो मनुष्य यह समझता है कि इंगलैण्ड निवासी और फ्रान्स निवासी राइन प्रदेश स्थित सेनाओं के भरण-पोषण का भार अपने माथे लिये रहेंगे, वह भूल करता है। ऐसी अवस्था में स्वास्थ्यकर घेरों या बाँधों का अस्तित्व बहुत दिनों के लिए नहीं हो सकता। एक बात इस सम्बन्ध में और ध्यान में रखने की है। पाठक आजकल यह पढ़ते होंगे कि बेलजियम संधि परिषद् के फैसले से असन्तुष्ट है। इसका रहस्य भी मजेदार है। साथ ही यूरोपीय इतिहास अपने को दोहरा रहा है उसका यह तीसरा उदाहरण भी है। हम ऊपर लिख चुके हैं कि एक स्वास्थ्यकर घेरा या बाँध हालैण्ड और बेलजियम के कुछ खंडों को मिलाकर डाला जा रहा है। इस घेरे की दुहाई देकर बेलजियम सन्धि-परिषद् से असन्तुष्ट है और पिछले ही सप्ताह में यह खबर आई थी कि बेलजियम चाहता है कि १८३९ के अनुसार उसकी सीमा स्वीकार की जाय। बेलजियम डच प्रदेश अर्थात् हालैण्ड का कुछ अंश अपने राज्य में मिलाना चाहता है।

बात असल में यह है

फ्रान्स का जोर कम करने को उस समय की सन्धि-परिषद् ने फ्रान्स के उत्तर में एक शक्तिशाली डच साम्राज्य स्थापित करना चाहा था। ठीक उसी तरह से जिस तरह से कि आजकल का सन्धि-परिषद् जर्मनी का जोर कम करने को स्वास्थ्यकर घेरे डाल रहा है। इस समय बेलजियम और हालैण्ड के विरोध की

परवाह न कर दोनों राज्य एक कर दिये गये थे और डच राजा से कहा गया था कि वह एक शक्तिशाली सेना तैयार करे। फ्रान्स को काबू में रखने के लिए फ्रान्स के उत्तर में यह जबर्दस्त शत्रु खड़ा किया गया था। उस समय बेलजियम का कुछ अंश हालैंड को मिल गया था। अब भय का स्थान फ्रान्स नहीं वरन् जर्मनी हो गया है। अब जर्मनी को घेरे में रखना है, फ्रान्स इसलिए चाहता है कि बेलजियम शक्तिशाली हो। फ्रान्स का शासक-मंडल इसलिए डच कोयले की खानों के प्रदेशों को बेलजियम को देना चाहता है। बेलजियम भी चिल्ला रहा है कि हालैण्ड के कुछ प्रदेश उसको मिल जायँ और इसी कारण से वह १८३९ की सीमा की दोहाई दे रहा है। हमको इतना ही कहना है कि यूरुप अपने कर्मों का फल भोग रहा है। वीयना की सन्धि-परिषद् में जो उसने किया था उसका फल अब वह भोग रहा है, अब जो सन्धि-परिषद् में वह कर रहा है इसका भी फल वह शीघ्र ही भोगेगा।

[ता० ७ जून, सन् १९१९
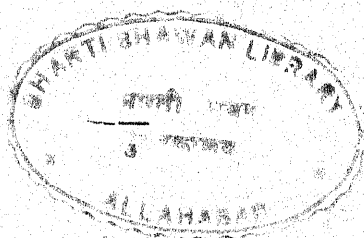
सन्धि-परिषद् का मतभेद और इटली का रहस्य

[युद्ध-काल में मित्र-राष्ट्रों के बीच जो गुप्त सन्धियाँ हुईं उनके भयावह परिणाम की सूचना विद्वान् लेखक ने सन् १९१९ में इस लेख द्वारा दे दी थी। उनकी भविष्यवाणी थी "कि इटली राष्ट्र-संघ से अलग हो जायगा और राष्ट्र-संघ भी छिन्न-भिन्न होकर पंगु बन जायगा।"

सन् १९१४ में होने वाले महायुद्ध के रहस्य उसके कारण और उद्देश्य इस लेख में पढ़ें। —सम्पादक]

बाँट में झगड़ा

युद्धकाल में यदि कोई कहता था कि गुप्त सन्धियाँ मित्रदल को हानि पहुँचा रही हैं, मित्रदल के युद्ध के उद्देश्य शीघ्र प्रकट होने चाहिए, तो वह कैसर का दूत या जर्मन-पक्षवादी के नाम से पुकारा जाता था और राह चलते उस पर अंगुली उठाई जाती थी। किन्तु अब संसार यह देख रहा है कि ऐसा कहनेवाले शत्रु नहीं थे, किन्तु शत्रु वे थे जो 'चुप-चुप' के चित्कार से संसार को त्रस्त कर रहे थे, जो यह चाहते थे कि मित्रदल के कार्यों की टीका-टिप्पणी न हो और जो 'हम' और अपने सैनिक बल को ही अपना उपास्यदेव समझ बैठे थे।

आज सन्धि-परिषद् में मतभेद है, मतभेद भी साधारण नहीं है। चीन, जापान, फ़ारस, इटली सभी असन्तुष्ट हैं और अपनी बातों के लिए जान तक देने को तैयार हैं। इसका फल भयावह हो सकता है। इसी कारण से आज हम इस सम्बन्ध में कुछ विचार

प्रकट करना चाहते हैं। हमने कहा था कि अमेरिका के रहस्य का हम परदा उठावेंगे, किन्तु इसके पहले यह आवश्यक प्रतीत होता है कि हम

इटली और जापान

का परदा फ़ाश करें, क्योंकि इन दोनों की ज़िद के कारण इस समय सन्धि-परिषद् डावाँडोल है। इसका एक कारण यह भी है कि नव-संगठित राष्ट्र-संघ के ये दोनों स्थायी सदस्य हैं। नियमों के अनुसार संसार का भावी ढाँचा गढ़ने में इन दो का हाथ आवश्यकता से अधिक है। इस समय की इनको तथा अमेरिका, इंगलैण्ड और फ्रान्स की कार्यवाहियों को संसार गंभीरतापूर्वक देख रहा है, क्योंकि यही इस बात का द्योतक है कि राष्ट्र-संघ का हृदय कैसा है, वह क्या चाहता है और स्वार्थ की मात्रा उसमें कितनी है। इटली और जापान के मसले पर विचार करना इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि इससे यह विदित होगा कि

राष्ट्र-संघ कितने दिन चलेगा?

यदि जापान और इटली अपनी ज़िद पर अड़े रहे तो यह असम्भव नहीं कि राष्ट्र-संघ से उनको अलग हो जाना पड़े। आज इन्हीं सब कारणों से हम

इटली की समस्या

पर विचार करना चाहते हैं। जापान के संबन्ध में चर्चा हम अगले अध्याय में करेंगे। इटली १६१५ में युद्ध में सम्मिलित हुआ था। इतने दिनों तक वह जर्मनी तथा मित्रदल से युद्ध में सम्मिलित होने का मूल्य तय कर रहा था। इस समय में मित्रदल की दशा बहुत ही शोचनीय थी और विजय-लाभ असम्भव दिखाई देता था।

मित्रदल के सेना-नायक चिन्तित थे और बढ़ते हुए जर्मनों को रोकने का एकमात्र उपाय उनको इटालियन सेना का सम्मिलित होना दिखाई देता था। समस्या को भले प्रकार से समझाने के लिए यह आवश्यक है कि हम यह बतलायें कि युद्ध के कारण और उद्देश्य क्या थे? वास्तव में बात यह थी कि जर्मनी पूर्व में साम्राज्य बढ़ाना चाहता था। वह बालकन प्रायद्वीप और टर्की को पंजे में कर एशियामाइनर, बगदाद तथा भारत के लिए अपना रास्ता साफ़ करना चाहता था रूस का भी कुछ ऐसा ही उद्देश्य था। वह दरेदानियल, कुस्तुन्तुनियाँ, लिवाँट आदि चाहता था। साम्राज्य-विस्तार की उसकी भी इच्छा थी। युद्ध का सन्निकट कारण आस्ट्रिया के युवराज का हनन था युवराज की हत्या का उद्देश्य यह था कि हेप्सबर्ग घराने का अन्त हो जाय और इस प्रकार आस्ट्रिया-हंगरी के सम्मिलित राजघराने का वंश लोप हो। इस वंश और आस्ट्रिया-हंगरी के सम्मिलित राष्ट्र के अन्त से रूस को लाभ था, क्योंकि स्लावों का ज़ोर बढ़ता, वे रूस के मित्र थे और रूस की उद्देश्य-सिद्धि में वे सहायक होते। एक ओर रूस के लिए युवराज की हत्या सुखकर थी, दूसरी ओर

जर्मनी के लिए ज़हर थी।

आस्ट्रिया-हंगरी जर्मनी के हाथ में था, यदि उसकी प्रधानता बनी रहती तो जर्मनी को उससे सहायता मिलती, यह न होकर सर्बिया और स्लावों की प्रधानता जर्मनी के मार्ग में कंटक होती, क्योंकि स्लाव पग-पग पर जर्मनी को रोकते। इसी कारण जर्मनी ने युवराज का पक्ष लिया और रूस ने हत्याकारियों का। जो लोग यह समझते हैं कि संसार परमार्थ से प्रेरित होकर उठता-बैठता है, वे समझें कि रूस और जर्मनी न्याय या मित्रता के कारण लड़ने को

तैयार हो गये थे किन्तु हमारा कहना यही है कि

संसार में स्वार्थ

प्रधान है, अपना स्वार्थ लोग पहले देखते हैं और उसी के सहारे वे काम करते हैं। जर्मनो हत्याकारियों को दंड देने के लिए रण-क्षेत्र में नहीं आया और न रूस ने स्लावों की, दुर्बलों की रक्षा के निमित्त म्यान से तलवार निकाली। अस्तु, दक्षिणी स्लाव प्रदेश मित्रदल की रक्षा के निमित्त बड़े जबर्दस्त किले थे। ये आस्ट्रो-हंगरियन राजघराने के शत्रु थे, और कैसर के घराने के विरोधी। यदि मित्रदल इनको सहारा देकर उठा लेता, यदि मित्रता इनसे स्थापित हो जाती तो मध्य यूरुप का शीघ्र ही खातमा हो जाता, आस्ट्रिया-हंगरी और जर्मनी चारों ओर से घिर जाते, रोमानिया तुरन्त रणक्षेत्र में उतर आता, बलगेरिया तटस्थ हो जाने के लिए विवश हो जाता, टर्की को जर्मनी से सहायता मिलने का मार्ग बन्द हो जाता और मित्रदल के लिए जल और स्थल के दोनों ही मार्ग रूस तक सुरक्षित मिल जाते। मित्रदल के लिए समस्त यूरुप में यूगोस्लाव और दक्षिणी स्लाव प्रदेशों से बढ़कर कोई दूसरा स्थान न था यूगोस्लाव सर्वियनों से मैत्री स्थापित करने के लिए उतावले भी थे और मित्र-राष्ट्रों को वे रक्षक की दृष्टि से देखते थे। तात्पर्य यह कि यूगोस्लाव प्रदेशों में प्रधानता प्राप्त करना बालकन प्रदेशों पर कब्जा करने की कुंजी थी, किन्तु मित्र-दल के सेनानायकों के दिमाग में यह बात नहीं आई। उनको सिवा इटली की सहायता प्राप्त करने के और कोई उपाय नहीं दिखाई देता था। स्वरक्षा के निमित्त वे सब कुछ करने को तैयार थे और सहायता के अर्थ इटली को मुँहमाँगा मूल्य देने के लिए वे उत्सुक थे। इसीलिए इटली से १६१५ ई० में लंदन में

ज़हरीली गुप्त-सन्धि

चुप-चुप स्थापित हो गई। इस सन्धि से इटली को वे प्रदेश प्राप्त हो गये जिनमें जर्मन, यूनानी और दक्षिणी स्लाव निवास करते। गुप्त सन्धि मित्रदेशों में ही रह सकी। सन्धि होते ही आस्ट्रिया ने इन शर्तों को छापकर स्लाव प्रदेशों में वितरित कर दिया। स्लाव फौज मित्रदल का साथ देने को, आस्ट्रिया-हंगरी के विरुद्ध बलवा करने को तैयार थी, किन्तु गुप्त-सन्धि की शर्तों को देखकर उसके पैर हिल गये। सन्धि की शर्तों को देखकर उसने समझा कि मित्रदल की विजय का अर्थ होगा उनका खंड-खंड और साथ ही साथ इटली के अधीन होना। वे स्वतंत्र होना चाहते थे उसकी आशा दूर हुई। दूसरी अच्छी बात उनके लिए यह थी कि कम से कम वे सब एक रहें, यह आस्ट्रिया-हंगरी की विजय से हो सकता था, और इसलिए उन लोगों ने आस्ट्रिया का साथ देना ही उचित समझा क्योंकि वे समझते थे कि एक बार यदि वे इटली के आधीन हो गये तो फिर गुलामी की जंजीर उनको सदा के लिए जकड़ देगी, इसके विपरीत आस्ट्रिया-हंगरी का राष्ट्र डगमगा रहा था, उसके अधीन रहने में एक न एक दिन निकट भविष्य में ही स्वतंत्रता का प्राप्त हो जाना निश्चित था। इसलिए

गुप्त-सन्धि का प्रथम फल

यह हुआ कि जिस समय इटालियन सेना हंगरी की ओर बढ़ी तो उसे दक्षिणी स्लाव सेना का मुकाबला करना पड़ा। अब ये क्रान्तिकारियों या आस्ट्रिया के शत्रुओं की हैसियत से इटालियन सेना का स्वागत नहीं कर रहे थे। वरन् अपने गृहों और अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के निमित्त वे इटालियनों पर गोलाबारी कर रहे थे। गुप्त सन्धि ने इस तरह मित्रों को शत्रु बना दिया। इतना ही होता तो भी अधिक चिन्ता की बात न थी किन्तु इस

गुप्त-सन्धि ने गुल खिलाये

यूगोस्लावों की आशा पर पानी फिरते देख और यह कि मित्रदल में उनका विश्वास नहीं, सर्बियन सेना भी ढीली पड़ गई, साथ ही साथ सन्धि की शर्तों से यूनान के क्रोध का भी पारा चढ़ गया। यदि इटली से गुप्त-सन्धि न हुई होती, यदि यूगोस्लावों को यह वचन दिया गया होता कि उनका कोई प्रदेश उनसे न छीना जायगा तो बलगेरिया को अपने पक्ष में कर लेना सहज था, क्योंकि मेसीडोनिया का मामला न्याय पर स्थित था किन्तु यूगोस्लावों का प्रदेश इटली को देकर सर्बियनों से यह कहना कि मेसोडोनिया तुम छोड़ दो असम्भव था। जर्मनी मेसोडोनिया को दिला देने का दम भर सकता था और सर्बिया पर पीछे से हमला हो गया। यूनान निवासी मित्रदल के पक्षवाले भी कुछ नहीं कर सकते थे, क्योंकि गुप्त-सन्धि की शर्तों को पढ़कर यूनानी मित्रदल के विरुद्ध हो गये थे। इस तरह से

गुप्त-संधि का ज़हर

फैला और नतीजा यह हुआ कि यूनान में आपस में विरोध हो गया, सर्बिया अपनी किस्मत पर छोड़ दिया गया। बलगेरिया जर्मनी और आस्ट्रिया के साथ हो गया, टर्की जर्मनी का गुलाम हो गया, रूस बोतल में बन्द हो गया और आस्ट्रिया-हंगरी अखंड हो गया। इटली की सहायता का यह मूल्य बहुत ज्यादा था, किन्तु मित्रदल का प्राण इतने ही से नहीं छूटा। दिन पर दिन उसे इस गुप्त-सन्धि के कारण अधिक हानि सहनी पड़ी।

हानि बढ़ती गई

सन् १९१६ में बालकन प्रायद्वीप प्रायः मिट गया। रूसी

दरबार में जाल, धोखा और फ़रेब की वृद्धि के कारण रोमानिया एकदम बेदम हो गया, दूसरी ओर स्लाव सेना के इटली से लड़ने के लिए तैयार होने से आस्ट्रिया-हंगरी की सेना को छुट्टी मिल गई और वह जर्मन सेना की सहायता करने को रूस पर चढ़ गई। रूस का पतन हुआ और सन् १६ में ही मित्रदल और शत्रुदल में सन्धि के संदेशे भुगतने लगे। मित्र-राष्ट्रों की दशा बहुत ही शोचनीय हो गई थी। संसार का विश्वास उनकी बड़ी-बड़ी बातों में कम होने लगा और संसार को अपने पक्ष में करने को अपने पक्ष को न्याय पर स्तम्भित करना जरूरी था। सन् १७ में मित्र-राष्ट्रों ने रा० विल्सन को उत्तर देते हुए लिखा था कि उनका उद्देश्य आस्ट्रिया के अधीन हीन त्रस्त जातियों को, जो स्वतंत्र होने के लिए बलवा करने को तैयार हैं, सहायता देना है किन्तु यह चाल भी नहीं चली। ज़ारशाही रूस ने पोलैण्ड को स्वतन्त्रता देना स्वीकार नहीं किया, दूसरे इटली ने गुप्त-सन्धि की दोहाई देकर यूगोस्लावों को स्वतन्त्र करने का विरोध किया।

साम्राज्यविस्तार और स्वार्थ

ने मित्रदल से फिर भूल कराई। मित्रदल ने सम्मिलित नोट में उत्तर देते हुए लिखा कि 'मित्रदल इटालियनों, स्लावों, रोमा-नियनों और जेकोस्लावों को परतंत्रता की बेड़ी से रिहाई देना चाहता है।' स्लाव के स्थान पर दक्षिणी स्लाव शब्द होना चाहिए था, क्योंकि यूगोस्लाव भी स्लाव में हैं, किन्तु

इटली की प्रसन्नता

के लिए यह नहीं किया गया। मित्रदल गुप्त-सन्धि के कारण साफ़-साफ़ कुछ नहीं कह सकता था और इस तरह से उन्हीं लोगों से जिनको स्वतंत्र करने की कुछ इच्छा थी वह खुला व्यव-हार नहीं कर सकता था। यह किसी से छिपा नहीं कि जिस समय

रूस में विप्लव

हुआ और अमेरिका रणक्षेत्र में सम्मिलित हुआ था, मित्रदल की हार निकट थी। चारों तरफ लोग चिल्ला रहे थे कि मित्रदल को अपने युद्ध के उद्देश्यों को साफ प्रकट करना चाहिए। संसार को इसकी आवश्यकता भी बहुत थी, किन्तु कोई सनकता न था। केरेन्सकी को इससे बहुत सहायता मिलती, क्योंकि रूसी प्रजातन्त्र गुप्त-सन्धियों के लिए लड़ने से इन्कार करता था, किन्तु इटली की सन्धि के कारण मित्रदल की जबान बन्द थी। इसका फल यह हुआ कि रूस में बोलशेविज्म अर्थात् किसानों और श्रमजीवियों का राज्य स्थापित हो गया।

लन्दन की गुप्त-संधि

के कारण इस तरह से मित्रदल को बहुत हानि उठानी पड़ी और सहस्रों मनुष्यों के खून का उत्तरदायित्व इस सन्धि के माथे है। सन्धि की शर्तों के सुधार के लिए बराबर बीच-बीच में प्रयत्न होता रहा, किन्तु कुछ हो न सका। अब इसी सन्धि की दोहाई देकर इटली सन्धि-परिषद् से अलग हो गया है। लायड जार्ज और क्लिमैन्सो सन्धि की शर्तों को पूरी करने के लिए तैयार हैं, किन्तु उनका कहना है कि फ़ायूम का जिक्र सन्धि में नहीं है और उस पर कब्जा इटली को न करना चाहिये। दूसरी ओर रा० विल्सन संसार को "स्वभाग्य निर्णय" और अमेरिका के दिये हुए वचन को दोहाई दे रहे हैं। यह हाथी के दिखाने के दाँत हैं, परमार्थ का राग है। यही स्वभाग्य निर्णय का राग कियाचौ, फारस, आयरलैण्ड या और ही किसी त्रस्त प्रदेश के लिए नहीं अलापा जाता क्योंकि उनमें रा० विल्सन या अमेरिका का कोई स्वार्थ नहीं है। वास्तव में बात यह है कि फ़ायूम पर इटली का स्वतंत्र अधिकार हो जाने से अमेरिकन, अङ्गरेज और फ्रेंच पूँजी-

वाले फ़ायूम के बन्दरगाह से वैसा ही लाभ न उठा सकेंगे जैसा कि उसके इटली के अधीन न रहने से वे उठा सकते हैं। इसलिए फ़ायूम के लिए झगड़ा हो रहा है। यह भी सम्भव है कि राष्ट्र-संघ या मित्रदल से इटली अलग कर दिया जाय क्योंकि इटली के साम्राज्यवादियों और पूँजीवालों के स्वार्थ भिन्न-भिन्न हैं। दूसरा कारण यह भी है कि यह सम्भव नहीं कि इटली किसी क्षण बोलशेविक हो जाय और मित्रदल में से किसी का बोलशेविक हो जाना मित्रों के लिए हानिकर होगा। इटली के साम्यवादियों की कार्यकारिणी समिति ने यह प्रस्ताव पास कर दिया है कि इटालियन साम्यवादियों को मित्रदल के साम्यवादियों का साथ छोड़ कर रूसी तथा अन्य देशों के क्रांतिकारियों का साथ देना चाहिए। इटली से इन कारणों से भी मित्रदल चौकन्ना है।

[२१ जून, १९१९

एशियाई महाभारत का बीज-वपन

[इटली का रहस्योद्‌घाटन करने के बाद जापान की चालों का अन्दाज़ इस लेख में लगाया गया है। उसकी माँगों का रहस्य खोला गया है।

लेखक का यह राजनैतिक भविष्य सत्य-सिद्ध हुआ कि "इस शताब्दी के भीतर एशियाई महाभारत का रण-नाद विश्व को कँपा देगा।"

यह लेख एशिया की राजनीति का जीवित इतिहास है।

—सम्पादक]

दूसरा 'रद्दी के कागज़' का टुकड़ा

जिस तरह से कि यूरोपीय शांति के लिए इटली का मामला ज़हर हो रहा है उसी तरह से जापान का मामला एशियाई शांति के [illegible] का भंग करनेवाला है। केवल न्याय की दृष्टि से न देखते हुए भी जापानी झगड़े को देखकर यह मानना पड़ेगा कि जापान एशियाई महाभारत का बीज बो रहा है। पाठकों से यह छिपा नहीं कि चीन के बाक्सर उपद्रव के बाद जर्मनी ने किसी प्रकार से चीन से कियाचौ छीन लिया था। यह सन् १८९८ की बात है। इसी प्रदेश में सिंगटाऊ नामक एक सुन्दर बन्दरगाह है। यह प्रदेश शांटुङ्ग प्रान्त में सम्मिलित है। जिस समय कि जापान युद्ध में सम्मिलित हुआ, उसने जर्मनी को यह लिखा था कि चीनी प्रदेश को वह शांति-पूर्वक लौटा दे क्योंकि जापान उस चीनी प्रदेश को उसके असली मालिक चीन सरकार को लौटा देना चाहता है। जापान के इस कथन पर उसी समय टीका-

वाले फ़ायूम के बन्दरगाह से वैसा ही लाभ न उठा सकेंगे जैसा कि उसके इटली के अधीन न रहने से वे उठा सकते हैं। इसलिए फ़ायूम के लिए झगड़ा हो रहा है। यह भी सम्भव है कि राष्ट्र-संघ या मित्रदल से इटली अलग कर दिया जाय क्योंकि इटली के साम्राज्यवादियों और पूँजीवालों के स्वार्थ भिन्न-भिन्न हैं। दूसरा कारण यह भी है कि यह सम्भव नहीं कि इटली किसी क्षण बोलशेविक हो जाय और मित्रदल में से किसी का बोलशेविक हो जाना मित्रों के लिए हानिकर होगा। इटली के साम्यवादियों की कार्यकारिणी समिति ने यह प्रस्ताव पास कर दिया है कि इटालियन साम्यवादियों को मित्रदल के साम्यवादियों का साथ छोड़ कर रूसी तथा अन्य देशों के क्रांतिकारियों का साथ देना चाहिए। इटली से इन कारणों से भी मित्रदल चौकन्ना है।

[२१ जून, १९१९

——

एशियाई महाभारत का बीज-वपन

[इटली का रहस्योद्‌घाटन करने के बाद जापान की चालों का अन्दाज़ इस लेख में लगाया गया है। उसकी माँगों का रहस्य खोला गया है।

लेखक का यह राजनैतिक भविष्य सत्य-सिद्ध हुआ कि "इस शताब्दी के भीतर एशियाई महाभारत का रण-नाद विश्व को कँपा देगा।"

यह लेख एशिया की राजनीति का जीवित इतिहास है।

—सम्पादक]

दूसरा 'रद्दी के काग़ज़' का टुकड़ा

जिस तरह से कि यूरोपीय शांति के लिए इटली का मामला ज़हर हो रहा है उसी तरह से जापान का मामला एशियाई शांति के [illegible] का भंग करनेवाला है। केवल न्याय की दृष्टि से न देखते हुए भी जापानी झगड़े को देखकर यह मानना पड़ेगा कि जापान एशियाई महाभारत का बीज बो रहा है। पाठकों से यह छिपा नहीं कि चीन के बाक्सर उपद्रव के बाद जर्मनी ने किसी प्रकार से चीन से कियाचौ छीन लिया था। यह सन् १८६८ की बात है। इसी प्रदेश में सिंगटाऊ नामक एक सुन्दर बन्दरगाह है। यह प्रदेश शांटुङ्ग प्रान्त में सम्मिलित है। जिस समय कि जापान युद्ध में सम्मिलित हुआ, उसने जर्मनी को यह लिखा था कि चीनी प्रदेश को वह शांति-पूर्वक लौटा दे क्योंकि जापान उस चीनी प्रदेश को उसके असली मालिक चीन सरकार को लौटा देना चाहता है। जापान के इस कथन पर उसी समय टीका-

टिप्पणी हुई थी । जापान के मित्रों का और जो यह चाहते थे कि जापान मनमाना लाभ उठाये, यह कहना था कि जापान जर्मनी से नेकनीयती से युद्ध करने को तैयार है। वह एशिया से जर्मनी के खंभ तोड़ देना चाहता है, जिसमें शान्ति को भंग करनेवाला कोई मार्ग में न रहे । दूसरे दल के मनुष्यों का यह कहना था कि जापानी इङ्गलैण्ड के चेले होते हुए भी कूट-नीति के विषय में इङ्गलैण्ड के गुरु हैं। कूटनीति की शिक्षा यही है कि स्वार्थ या अपने मतलब की झलक अपनी बातों में कहीं से दिखाई न दे । अस्तु , जर्मनी ने जापान की बातों की तनिक भी परवाह न की और जापानी जहाजों ने आक्रमण किया । सदा के मित्र कुछ ब्रिटिश सैनिकों ने भी इस आक्रमण में जापानियों को सहायता दी । चीनी प्रदेश घेर लिया गया और ७वीं नवम्बर को सिङ्गटाऊ ने आत्म-समर्पण किया । इस आक्र-मण के सम्बन्ध में दो-एक बातें ध्यान में रखने योग्य हैं । जापान को आक्रमण जर्मन अधिकृत भूमि पर ही करना चाहिये था किन्तु उसने आस-पास के चीनी प्रदेशों पर भी हाथ साफ़ किया । दूसरी बात यह है कि जापानी सेना सिङ्गटाऊ पर चढ़ गई और शांटुङ्ग प्रदेश पर उसने अपना पूरा-पूरा कब्ज़ा जमा लिया । उसी समय लोगों ने टीका-टिप्पणी की । यह कहा जाने लगा कि जर्मनी यदि केवल इसलिए दंडनीय है कि उसने बेल्जियम पर चढ़ाई कर उसकी तटस्थता भंग की तो फिर जापान ने भी चीनी-साम्राज्य की तटस्थता भंग की । यह ध्यान में रखना चाहिए कि कोई यह नहीं कहता था कि कियाचौ आदि जर्मन प्रदेशों पर आक्रमण करना बुरा था किन्तु न्याय की दोहाई देनेवालों का यह कहना था कि आस-पास के चीनी प्रदेशों पर आक्रमण करनेवाले को दंड मिलना चाहिए। यह अनुचित भी न था किंतु जैसा कि संसार में देखा गया है कि जबर्दस्त से कोई कुछ नहीं

कहता, न्याय, धर्म आदि की व्याख्या सब कमजोरों के लिए है। यह एक तरह से उचित भी है, क्योंकि यदि कमजोरों को, गरीबों को, हीनों को न्याय और धर्म की व्याख्या से संतोष न दिया जाय तो संसार से अन्याय, अधर्म, गरीबी और हीनता का नाम-निशान मिट जाय। गरीबों से यह कहा जाता है कि गरीबी अच्छी वस्तु है, गरीबों पर ईश्वर दया करता है किन्तु यह कहने वाला, गरीबों का रक्त चूस कर अमीर होनेवाला एक भी अमीर कूट-नीतिज्ञ, धर्मिष्ठ हमें ऐसा नहीं दिखाई देता जो अपनी समस्त संपत्ति दूसरों को देकर इसलिए गरीब हो गया हो कि ईश्वर गरीबों से प्रसन्न रहता है या उन पर दया करता है। अस्तु, जर्मनी के लिए जो दंडनीय था, जापान के लिए वही प्रशंसा की बात हुई।

चीन ने चीत्कार किया

किन्तु जैसा कि संसार में होता आया है और होता रहेगा निर्बल की कोई सुनवाई नहीं हुई। इतना ही होता तो भी अधिक शिकायत का अवसर न होता किन्तु मामला यहीं पर समाप्त नहीं हुआ। चीन के चिल्लाने पर जनवरी, १९१५ में जापान ने उसका एकदम गला घोंट देना चाहा। जापानी सेना और उसके जङ्गी जहाज मौजूद ही थे इसलिए बलदर्पी जापान ने अपनी लाल-लाल आँखें चीन को दिखाईं। चीन को विवश होकर जापान से संधि करनी पड़ी। जापान ने २१ शर्तें चीन से मनवा लीं। चीन ने संधि पर हस्ताक्षर तो कर दिया किन्तु उसने संसार के समस्त राष्ट्रों को सूचना भेज दी कि उसे विवश होकर सन्धि मान लेनी पड़ी है और वह प्रत्येक शर्त का विरोध करता है। इसी सन्धि-पत्र के साथ जापान का एक गुप्त-पत्र भी संलग्न था जिसमें कहा गया था कि जापान चीन को इस शर्त पर चीनी प्रदेश लौटा देने को तैयार है कि वह अपने प्रदेश के किसी स्थान में जापान की

स्थायी क़िलाबन्दी का प्रबन्ध करा दे और चीनी साम्राज्य की रेलों पर जापान और चीन का बराबर अधिकार हो। इतना करने पर भी जापान को सन्तोष नहीं हुआ और १९१८ में एक गुप्त-सन्धि कर उसने चीन के गले पर छुरी चलाई। इस सन्धि का संसार को पूरा पता नहीं है। आपको यह समझना चाहिए कि जापान यह सब क्यों कर रहा है? एशिया के नक्शे को सामने रखकर देखिए तो

जापानी माँग का रहस्य

सहज ही आप पर प्रकट हो जायगा। जापान के हाथ में कोरिया, पोर्टआर्थर और मंचूरिया की रेलें हैं। इससे सहज ही में जापानी सेना चीन के हृदय पेकिङ्ग पर पहुँच सकती है, यदि अब जापान को कियाचौ-प्रदेश मिल जाय, साथ ही रेल की सड़कों पर जर्मनी को जो स्वत्व प्राप्त थे यदि वे जापान को मिल जायँ तो शेन्सी प्रदेश की

संपत्तिशाली खानों

पर भी उसका पूरा कब्जा हो जायगा और घेतुए में दूसरी ओर से पेकिंग पर पहुँचने का रास्ता भी मिल जायगा। इस तरह से चीन की राजधानी जापान की मुट्ठी में हो जायगी और तनिक इच्छा होने से सहज ही में वह उसे पीस सकेगा। जापान इसलिए कियाचौ को चाहता है। उसके मार्ग में उसीका कथन कंटक हो रहा है। यह ऊपर लिखा जा चुका है कि जापान ने जर्मनी से कहा था कि वह चीनी प्रदेशों को चीन सरकार को लौटा देगा। संसार और चीन सरकार आज यह जानने को उद्विग्न है कि लौटालने का समय कब आवेगा? जापान अब इन प्रदेशों को लौटालने के लिए उत्सुक नहीं है। उसके मित्र और वह स्वयं कह रहा है कि चीनी प्रदेशों को लौटा देने के लिए वह वचन-

बद्ध नहीं। उसका कहना है कि यदि जर्मनी शान्तिपूर्वक उन प्रदेशों को लौटा देता तो जापान अपने कथन के अनुसार जरूर ही उन प्रदेशों को चीन सरकार के हवाले कर देता, किन्तु जर्मनी ने ऐसा नहीं किया। जापान को युद्ध करके इन प्रदेशों को जीतना पड़ा है। आक्रमण आदि करने में उसको कुछ खर्च भी करना पड़ा है, ऐसी अवस्था में उससे यह कहना कि उन प्रदेशों को लौटा दो, अनुचित है। संसार में जो न्याय का आदर देखना चाहते हैं, जो यह देखना चाहते हैं कि संसार में शान्ति रहे उनका जवाब यह है कि चीन निरपराध है। जर्मनी ने शान्तिपूर्वक उन प्रदेशों को नहीं लौटाला तो यह उसका दोष है। जापान को लड़ने में खर्च पड़ा है वह क्षतिपूर्ति की रकम के रूप में उसे जर्मनी से लेना चाहिए। इसका उत्तर जापान के पास कुछ नहीं है, किन्तु यह सब कुछ होते हुए भी जापान कियाचौ को लौटालने को तैयार नहीं, इसका भी एक रहस्य है। जिस समय कि जर्मन जलमग्न नौकाएँ बुरी तरह से मित्रराष्ट्रों के जहाजों का संहार कर रही थीं उस समय भूमध्यसागर में मित्रदल का नाविकबल बहुत हीन हो गया था। मित्रराष्ट्रों ने जापानी नौ-सेना की सहायता चाही। जापान सहायता देने को तैयार हुआ और उसने सहायता के मूल्य-स्वरूप में इंगलैण्ड, फ्रान्स और इटली से गुप्त-सन्धि कर ली। उक्त सन्धि में जापान ने कहा था कि इस सहायता के बदले में तीनों राष्ट्र जापान को कियाचौ में वह जो कुछ करना चाहेगा, करने देंगे। इसी सन्धि के भरोसे आज जापान कियाचौ के सम्बन्ध में मनमानी करने को तैयार है। जिस तरह से इटली ने इंगलैण्ड और फ्रान्स से सहायता का मनमाना मूल्य लिया था उसी तरह जापान ने इटली, इंगलैंड और फ्रान्स से मनमाना मूल्य लिया है। जापान और इटली को विश्वास है कि इंगलैण्ड और फ्रान्स उनका साथ देंगे।

अकेला अमेरिका कुछ समय के बकवाद के बाद विवश होकर चुप हो जायगा।

यूरुप में सम्भव है कि शान्ति स्थापित हो जाय, मगर हमारा विश्वास है कि शताब्दी के भीतर एशियाई महाभारत का रणनाद संसार को कँपा देगा। उस महाभारत का मुख्य कारण कियाचौ होगा और कियाचौ ही एशिया का अलसेस-लोरेन होगा।

[२८ जून, १९१९

महाप्रलयकारी युद्ध

[विश्व-राजनीति के भूत, भविष्य और वर्तमान पर विभिन्न विद्वानों, सम्प्रदायों और धर्म-ग्रन्थों की भविष्यवाणियों का उल्लेख करते हुए राजनैतिक भविष्य का जो सजीव चित्रण लेखक ने अपने मस्तिष्क और अध्ययन-अनुभव से किया है—उसमें उसका आत्म-विश्वास ललकार रहा है—कि युद्ध होगा और अवश्य होगा और एशिया महाद्वीप की जातियों का उसमें मुख्य भाग होगा। भारत में सत्याग्रह का आन्दोलन संसार को महाप्रलयकारी युद्ध की चेतावनी दे रहा है।

—सम्पादक]

महर्षि टालस्टाय ने सन् १९१० में संसार के भविष्य के संबंध में एक भविष्यवाणी की थी उन्होंने कहा था कि संसार में शीघ्र ही एक भीषण महाभारत होगा, जिसका परिणाम यह होगा कि संसार की राजनीति, शासन-नीति, समाज-नीति और धर्म-नीति की कायापलट हो जायगी और सन् १९२५ में एक महात्मा संसार को नये क्रम पर चलना सिखलायेंगे। और वही संसार के उपास्यदेव होंगे।

मुसलमानी धर्म-पुस्तकों से भी पता चलता है कि कयामत के आसार १९२५ के लगभग दिखाई देंगे और उस वक्त संसार में नूतन धर्म और नूतन बातें जारी होंगी। ईसाइयों की बाइबिल में समय का निरूपण तो नहीं किया गया है किन्तु प्रलय का ज़िक्र करते हुए उसमें कुछ घटनाओं का वर्णन दिया गया है। इसके सम्बन्ध में यह लिखा हुआ है कि जब ऐसी घटनाएँ हों, तो

समझना चाहिए कि संसार में महाप्रलयकारी युद्ध आरम्भ होगा, वर्तमान संसार नष्ट होगा, एक नया संसार उदित होगा, ईश्वर का अवतार होगा और संसार बिलकुल नूतन ढङ्ग पर चलेगा। जिन घटनाओं से यह समझने को कहा गया है कि महाप्रलयकारी युद्ध होनेवाला है, उसका प्रथम चिन्ह यह बतलाया गया है कि युद्ध के अंगारे युफ्रेटीज़ और टाइग्रीज नदी के तटवर्ती प्रदेश में दिखाई देंगे और पैलेस्टाइन के पास रणनाद सुनाई देगा। जिस समय १९१४ में यूरुप में महाभारत शुरू हुआ। उसी समय ईसाइयों के पादरियों और गुरुओं में बहस आरम्भ हो गई थी कि क्या प्रलय का युद्ध जिसकी चर्चा बाइबिल में है, आरम्भ हो गया? क्या अवतार के स्वागत की तैयारी हम लोगों को आरम्भ कर देनी चाहिए? इसी कारण से यूरुपीय महाभारत को "आरमागेडान" का नाम दिया गया था, क्योंकि बाइबिल में प्रलय-काल के युद्ध की इसी नाम से चर्चा की गई है। ईसाई-संसार में इस सम्बन्ध में कितनी ही पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं जिनमें लोगों से प्रार्थना की गई थी कि वे महान् आत्मा के स्वागत के लिए तैयार हो जायँ। ईसाई सम्प्रदाय के मनुष्यों का विश्वास चाहे जो कुछ रहा हो किन्तु उस समय में और आज भी हमारा विश्वास यही है कि यूरुपीय महाभारत स्वयमेव प्रलयकारी युद्ध न था किन्तु वह प्रलय के युद्ध का केवल पथ-प्रदर्शक था। हम ऐसा क्यों समझते हैं, उसका एक छोटा-सा सबूत यह है कि बाइबिल में महाप्रलय के युद्ध का विशेष चिन्ह यूफ्रेटीज़ और टाइग्रीज़ नदी के तट और पैलेस्टाइन के निकट जो युद्ध रणनाद का होना बतलाया गया है—उस समय न था। हमारे विश्वास का वास्तव में मुख्य कारण यह था क्योंकि हमारा विश्वास है कि संसार को नूतन रूप देनेवाला महाप्रलयकारी युद्ध एशिया महाद्वीप में होगा और उसमें भाग लेगा चीन, फारस,

अरब और भारत। विशेष रूप से जिन चीजों का और संकेतों का बाइबिल में इशारा है, वे बातें हमारी समझ में अब दिखाई देती हैं और कदाचित् दिन-दिन और दिखाई देंगी। इससे हमारा विश्वास यह है कि वास्तव में महाप्रलय का युद्ध अब आरम्भ होगा और संसार में महाप्रलय नहीं तो

महाक्रान्ति का दौरदौरा

जरूर होगा। एक तरह से संसार में महाक्रान्ति का युद्ध इसी समय में चल रहा है। सत्ययुग या सत्य के युग का प्रथम चरण संसार में उदित होता दिखाई दे रहा है। पिछले महाभारत की कम से कम शिक्षा, जिन लोगों को आँख है, देख सकते हैं कि यह है कि परराष्ट्र विभाग के द्वार चारों ओर से खुले रहें, जनता के प्रतिनिधियों की राय के बिना कुछ लोग बैठे-बिठाये स्वार्थ या साम्राज्यवाद से प्रेरित होकर गुपचुप सन्धियाँ न कर लिया करें और राष्ट्र को किसी के पक्ष में लड़ने या मरने को वचन-बद्ध न कर दिया करें। यह सब हो या न हो किन्तु जो इस समय संसार में हो रहा है, संसार की वर्तमान स्थिति जो है, मध्य यूरुप की जो दशा है, जर्मनी में जो हो रहा है और रूस जो कर रहा है, मिश्र और फारस जिसका स्वप्न देख रहे हैं, आयर्लैण्ड ने जिसको कार्य का रूप दे दिया है, चीन का अफीम का नशा उतारने को आपस में जो युद्ध हो रहा है, अमेरिका को प्रशान्त महासागर में अधिकार करना जो धर्म या कर्त्तव्य समझ पड़ रहा है, पूर्वीय प्रदेशों में स्वार्थों के विरोध के कारण जापान, इंगलैंड और अमेरिका में जो खींचतान हो रही है, श्रमजीवी-समाज संसार के जो एक सूत्र में गुँथ रहा है और भारत में जो

सत्याग्रह का आन्दोलन

जोर पकड़ रहा है, यह सब संसार को महाप्रलयकारी युद्ध की

चेतावनी दे रहा है। महाप्रलय का युद्ध होगा, शीघ्र होगा और एशिया महाद्वीप की जातियों का उसमें ,मुख्य भाग होगा। इस बात की सत्यता के अनेकों प्रमाण हैं। संसार में होनेवाला क्या है, राजनैतिक भविष्यवाणी एक भयावह और कठिन बात है किन्तु संसार की परिस्थिति को देखने से और वर्तमान राजनैतिक समस्याओं को हल करने से जो फल निकलता है, वह यही है कि युद्ध होगा और अवश्य होगा! अपने पक्ष के समर्थन में हमको जो बातें कहनी हैं, या हमें जो प्रमाण उपस्थित करने हैं उनको हम अगले किसी अध्याय में पाठकों की सेवा में निवेदन करेंगे।

[ता० २१ जुलाई, सन् १६२०

अनिवार्य महाभारत

[भूतपूर्व ब्रिटिश प्रधान मंत्री मिस्टर चेम्बरलेन ने अपनी ही कायर नीति से जेकोस्लोवाकिया का अंग-भंग करके 'सूडेटन' पर हिटलर का कब्ज़ा कराकर 'शान्ति-दूत' की पदवी प्राप्त की। उस समय अधिकांश लोगों ने समझा युद्ध टल गया, तब 'अभ्युदय' के पारदर्शी प्रधान सम्पादक ने ललकार कर कहा कि—"महायुद्ध टल गया, पर कितने दिन को?" ब्रिटेन की दब्बूपन नीति से लोकतन्त्र को गहरा धक्का लगा और फासिज़्म को प्रोत्साहन मिला। फासिस्ट जर्मनी और इटली शान्ति के नहीं आतंक के प्रेमी हैं। अतः युद्ध अनिवार्य है—वह होकर ही रहेगा। —सम्पादक]

इंगलैण्ड और फ्रान्स के हिटलर के सामने दबने और जेकोस्लोवाकिया का अंग-भंग करा देने से महायुद्ध टल गया। कितने दिन को? यह कोई नहीं कह सकता। सूडेटन के मिल जाने से हिटलर की इच्छा पूरी हो गई; पर क्या इतने से ही वह संतुष्ट हो जायगा, यह समझना भूल है। बहुत दिनों से हिटलर की कोशिश यह है कि जर्मनी को उसके खोये हुए उपनिवेश पुनः प्राप्त हो जायँ। इसी के लिये वह इतने ज़ोरों के साथ सैनिक तैयारियाँ कर रहा है। राइनलैण्ड की भूमि पर उसका सहज में कब्ज़ा हो गया, आस्ट्रिया उसे बगैर रक्त बहाये मिल ही गया और अब अपनी हेंकड़ी से हिटलर ने सूडेटन प्रान्त भी छीन लिया। मि० चेम्बरलेन "शान्ति के दूत" बने और शान्ति के नाम पर उन्होंने हिटलर का कब्ज़ा सूडेटन पर करा दिया। मि० चेम्बरलेन की इस नीति की बहुत से लोग भर्त्सना कर रहे हैं।

स्वयं उनके देश के कितने ही प्रमुख राजनीतिज्ञ उनकी इस नीति के विरोधी हैं। दूसरे लोग इन्हें शान्ति के संस्थापक के नाम से पुकार कर उनको बधाइयाँ दे रहे हैं। जो हो, चेम्बरलेन ने इस समय हिटलर को प्रसन्न कर युद्ध को टाल दिया। हिटलर भी खुशी के मारे फूले नहीं समाते और शान्ति स्थापित करने के लिये चेम्बरलेन को बधाइयाँ दे रहे हैं। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या हिटलर सन्तुष्ट हो गये ? क्या शान्ति स्थापित हो गई ? क्या अब युद्ध न होगा ? हम समझते हैं, नहीं। महत्वाकांक्षी हिटलर इतने से संतुष्ट नहीं हो सकता। धीरे-धीरे एक के बाद दूसरे उपनिवेशन पर वह जैसे होगा कब्जा करेगा और अपने सब उपनिवेश लेकर छोड़ेगा। मि० चेम्बरलेन यदि यह समझते हैं या कहते हैं कि शान्ति स्थापित हो गई तो वह संसार को और अपने आप को धोखा देते हैं। ब्रिटेन और फ्रान्स के आत्म-समर्पण कर देने पर भी शान्ति अभी कोसों दूर है। सूडेटन पर हिटलर के कब्जे का फल यह हुआ है कि यूरुप में विशेषकर मध्य यूरुप में भय छा गया है। मध्य यूरुप के छोटे-छोटे राष्ट्रों को हिटलर से चिन्ता हो गई है। हाल ही में हर फन्क ने बालकन आदि प्रदेशों की यात्रा की थी। इससे वहाँ के छोटे-छोटे राष्ट्रों को जर्मनी के मन्सूबों से शंका उत्पन्न हो गई है और जेकोस्लोवाकिया की याद कर वे अपने भाग्य के सम्बन्ध में चिन्तित हैं। वे यह अनुभव करते हैं कि उपनिवेशों की प्राप्ति के लिये जर्मनी का दाँत अब मध्य यूरुप के ऊपर होगा। दक्षिण अफ्रीका से भी जो समाचार आ रहे हैं वे भी कुछ इशारा करते हैं। दक्षिण-पश्चिम अफ्रिका के जर्मन खुल्लमखुल्ला इस बात का एलान कर रहे हैं कि दक्षिण-पश्चिम अफ्रिका दक्षिण अफ्रिका संघ में मिलाया जाय या जर्मनी को लौटा दिया जाय, इस बात का निर्णय करने के लिये जन-मत संग्रह किया जाय। शुरू-शुरू में

सूडेटन के जर्मनों ने भी इसी प्रकार सर उठाया था और सूडेटन का जो हाल हुआ उसे संसार ने देख लिया। घटनायें जिस प्रकार घट रही हैं और जर्मनी की शक्ति जिस तरह बढ़ रही है उसको देखते हुए तो यही कहा जा सकता है कि इंगलैण्ड और फ्रान्स में इतनी ताक़त नहीं कि वे जर्मनी के विरुद्ध कुछ कर सकें सिवाय इसके कि जर्मनी जो चाहे सो करे और वे "बहुत अच्छा" कह दें। जेकोस्लोवाकिया के आत्म-समर्पण से तो ब्रिटेन की शक्ति को और भी धक्का लगा है। ब्रिटेन की स्थिति कितनी ख़राब हो गई है इसका उल्लेख करते हुए मि० विखैमस्टैड ने "मान्चेस्टर इवनिंग न्यूज़" में लिखा है "जीवित स्मृति में ब्रिटेन और कामन वेल्थ की स्थिति इतनी कभी भी ख़राब नहीं हुई जितनी कि वह इस समय हुई है।" इतना ही नहीं उन्होंने यह भी लिखा है कि "आत्म-समर्पण ने महायुद्ध को अनिवार्य बना दिया है सिवाय इसके कि हम स्वयं सर झुका दें। महायुद्ध होगा और जब वह होगा तब न तो हमारी साख ही रहेगी और न सखा ही रहेंगे।" मि० चर्चिल ने भी इसी प्रकार स्पष्ट शब्दों में प्रेस एसोसियेशन को वक्तव्य देते हुए कहा है कि जेकोस्लोवाकिया के विभाजन से फ्रान्स और ब्रिटेन दोनों ही की स्थिति "सदा बढ़नेवाली कमज़ोरी और खतरे" की हो जायगी। उन्होंने यह भी कहा है कि "जेकोस्लोवाकिया को अकेले छोड़ने का मतलब यह होगा कि जर्मनी के २५ मण्डल पश्चिमी सीमा को धमकी देने के लिए स्वतन्त्र हो जायँगे और काले सागर का रास्ता इन विजयी नाज़ियों के लिए खुल जायगा। हर हिटलर की शर्तों को मंजूर करने का असर यह है कि यूरुप नाज़ी शक्ति के सामने झुक गया।.......जर्मनी की युद्ध-शक्ति फ्रान्स और ब्रिटेन की रक्षा की अपेक्षा अधिक तेज़ी के साथ बढ़ेगी।" इसमें सन्देह नहीं कि जेकोस्लोवाकिया के आत्मसमर्पण से फ्रान्स और ब्रिटेन की

ताकत कुछ बढ़ी नहीं घटी ही है। यूरुप में फ्रान्स और ब्रिटेन लोकतंत्र के रक्षक ख्याल किये जाते थे, किन्तु जिस साहसहीनता और दब्बूपन के साथ उन्होंने जेकोस्लोवाकिया को जर्मनी के सिपुर्द कर दिया और रक्षा का वचन देकर भी वे निकल गये उससे यूरुप के लोकतंत्र को गहरा धक्का लगा और फासिज्म को प्रोत्साहन मिला। अब तो ब्रिटेन जर्मनी की दोस्ती के फेर में है। फासिस्ट जर्मनी और इटली शान्ति के नहीं आतंक और युद्ध के प्रेमी हैं। वे "जिसकी लाठी उसकी भैंस" में विश्वास रखते हैं और तलवार के जोर से राज्य करते हैं। आज यूरुप में उन्हीं का बोल बाला है। फिर भला शान्ति कैसी! हम इसीलिये कहते हैं कि युद्ध टल गया पर कितने दिन को?

[१७ अक्टूबर, १९३८ ई०

—

युद्ध की घटायें और हमारा भविष्य

[क्रांतदर्शी पत्रकार की सिद्ध-हस्त-लेखनी ने १९३८ ई० में लिख दिया कि "यूरुप इस समय ज्वालामुखी के मुख पर बैठा है। इंगलैण्ड के लाख प्रयत्न करने पर भी युद्ध रुक नहीं सकता टल भले ही जाय। यह ज्यों-ज्यों टलता जायगा स्थिति सुधरने के बजाय बिगड़ती जायगी, और इस युद्ध से अधिक नुक़सान इंगलैण्ड का होगा।"

यूरुप का भविष्य इस प्रकार बतलाकर अपने भारत के भविष्य पर अकाट्य प्रकाश डालते हुए आपने स्पष्ट चेतावनी दी कि यदि हमारे नेताओं ने पिछली भूलों से लाभ उठाया और इस बार बुद्धिमानी से अपने ताश फेंके तो निश्चय ही भारत को उसका अभीष्ट प्राप्त हो सकता है।

पंडितजी का अभिप्राय यह था कि इंगलैण्ड युद्ध में फँसे रहने से दो-दो मोर्चा लेने को तैयार न होगा, अपनी शक्तिभर भारत को सन्तुष्ट रखने का प्रयत्न करेगा। ऐसी स्थिति में नेताओं की बुद्धिमानी देखना है कि इस अवसर से लाभ उठाते हैं या नहीं!

नेताओं ने जो बुद्धिमानी की उसका कटु-फल देश भोग रहा है, भगवान् जाने उनकी बुद्धिमानी का गलहार कब तक वक्षःस्थल पर पड़ा रहे। —सम्पादक]

'अभ्युदय' के पिछले अङ्क में जेकोस्लोवाकिया संबंधी लिखे हुए नोट की स्याही सूखने भी न पाई थी कि खबर आई कि कुछ यूरोपियन राष्ट्रों ने सेनाओं को एकत्रित होने और तैयार रहने की आज्ञा प्रचारित कर दी और सूडेटन जर्मनों ने भी जेकोस्लोवेकियन सरकार को अन्तिम सूचना भेजी है। नूरेमबर्ग में हिटलर के भाषण से स्थिति और भी गम्भीर हो गई। यह भी

समाचार आया कि सूडेटन जर्मनों और जैकोस्लोवेकियन पुलीस में यत्र-तत्र छोटी-मोटी लड़ाइयाँ भी हुई हैं। स्थिति को विकट देखकर ब्रिटेन के प्रधान मंत्री चैम्बरलेन साहब घबड़ाकर हिटलर से मिलने के लिये हवाई जहाज से उड़कर जर्मनी गये और कहा जाता है कि वह वहाँ पर यूरुप में शान्ति-स्थापन का अंतिम प्रयत्न करेंगे। वे ढाई घंटे हिटलर से वार्तालाप करके इंगलैंड लौट आये और आगामी २० सितम्बर को अपने साथियों से परामर्श करके पुनः जर्मनी जायेंगे।

स्वभावतः लोग सोचेंगे कि आखिर इंगलैंडवाले शान्ति के लिये इतने प्रयत्नशील क्यों हैं? हमने पहले ही लिखा था कि संसार में युद्ध कभी का हो गया होता, नहीं हो रहा है तो इसका कारण यह है कि इंगलैंड युद्ध के लिये अभी तैयार नहीं है। जिस दिन इंगलैण्ड तैयार हो जायगा यूरुप में महाभारत छिड़ जायगा।

यद्यपि इंगलैंड ने इधर युद्ध की तैयारी काफ़ी कर ली है, किन्तु अब भी वह कुछ समय चाहता है। अनेक मौक़े आये, इंगलैंड को कहीं-कहीं नीचा भी देखना पड़ा पर वह चुपचाप सब सहता गया क्योंकि वह बिना पूरी तैयारी किये हुए संग्राम में पड़ना नहीं चाहता। आज भी वह समय चाहता है और उसकी इच्छा नहीं है कि तत्काल ही कोई महाभारत छिड़े, क्योंकि एकबार महाभारत छिड़ जाने पर वह अलग नहीं बैठा रह सकता।

दूसरी बात यह है कि इंगलैंड के स्वार्थ इतने फैले हुए हैं कि वह यही नहीं तय कर पाता कि युद्ध छिड़ने पर वह किसका साथ दे। इंगलैण्ड की सरकार इस समय दकियानूसियों की है उस पर रोजगारियों और पैसेवालों का प्रभाव है। ये रोजगारी और सम्पत्तिशाली लोग यह नहीं चाहते कि यूरुप में साम्यवाद का प्रचार बढ़े और साम्यवादी रूस संसार का नेता हो।

साम्यवाद इंगलैंड के पूँजीपतियों को फूटी आँख नहीं सुहाता। उसका हर दशा में विरोध करना उनका सर्वोपरि स्वार्थ है। इधर इंगलैंड के पुराने दोस्त और साथी फ्रांस ने रूस से सन्धि कर ली है और ये दोनों एक हो रहे हैं। यह सब देखकर फ्रांस के जन्म-जात शत्रु जर्मनी के प्रति इंगलैंड ने भीतरी सहानुभूति रखनी शुरू की और कहनेवाले तो यहाँ तक कहते हैं कि हिटलर इंगलैंड के वैदेशिक सचिव लार्ड हैलीफेक्स के इशारे पर ही नाचते हैं। साम्यवाद के सबसे बड़े विरोधी इस समय जर्मनी और इटली ही हैं।

इसीलिये पूँजीपतियों द्वारा शासित इंगलैंड इनका विरोध नहीं कर सकता। साथ ही वह इन दोनों का खुलकर साथ देते हुए भी हिचकिचाता है क्योंकि उसे अपने उपनिवेशों की भी चिन्ता है। शक्ति का साम्य रखना (Ballance of Power) इंगलैंड की पुरानी नीति है। इंगलैंड न तो जर्मनी को ही अत्यधिक मजबूत देखना चाहता है और न यही चाहता है कि रूस और फ्रांस उसे बिलकुल लुंज-पुंज कर दें। हमारा तो विचार है कि यदि ब्रिटेन को युद्ध में पड़ना ही पड़ा तो बहुत सम्भव है कि वह जर्मनी की सहायता करे। उपनिवेशों का स्वार्थ उसे फ्रांस और रूस के साथ घसीटता है और पूँजीवाद का स्वार्थ जर्मनी और इटली के साथ। उसकी गति साँप छछूँदर की-सी हो रही है और इसीलिये वह अपनी शक्ति भर इस बात की कोशिश करेगा कि महाभारत इस समय न छिड़े। हिटलर यह सब ख़ूब समझ रहे हैं और इसीलिये अकड़े हुए हैं।

इंगलैंड जेकोस्लोवाकिया को दबाकर समझौता करा देना चाहता है, पर सम्भव है रूस और फ्रांस के प्रभाव में पड़कर जेकोस्लोवाकिया अपना सर देकर समझौता करने के लिये तैयार न हो। रूस का शत्रु जापान चीन की लड़ाई में फँसा हुआ है

और रूस चाहता होगा कि यह मौक़ा अच्छा है, अगर यूरुप में महायुद्ध छिड़ना है तो इसी समय छिड़ जाय।

जर्मनी की बढ़ती हुई शक्ति तथा भूख को देखकर फ्रांस सशंकित है। जर्मनी से सबसे अधिक खतरा फ्रांस को ही है। जेकोस्लोवाकिया के मामले को लेकर सबसे अधिक सैनिक तैयारी फ्रांस में ही हो रही है। यूँ तो सभी राष्ट्र सशंकित हो गये हैं और अपनी-अपनी तैयारी कर रहे हैं। अमेरिका के प्रेसीडेन्ट रूज़वेल्ट साहब तो अपने बीमार पुत्र को छोड़कर न्यूयार्क दौड़े हुए गये और समाचार-पत्रों के सम्वाद-दाताओं से कहा कि यूरुप की स्थिति बहुत विषम हो गई है।

यूरुप इस समय ज्वालामुखी के मुख पर बैठा हुआ है। इंगलैंड के लाख प्रयत्न करने पर भी युद्ध रुक नहीं सकता, टल भले ही जाय। यह युद्ध ज्यों-ज्यों टलता जायगा स्थिति सुधरने के बजाय बिगड़ेगी ही अधिक। और इस युद्ध में सबसे अधिक नुकसान भी इंगलैंड का ही होगा।

यह सब तो हुई यूरुप और अन्य राष्ट्रों की बातें। भारत का क्या होगा? इस युद्ध से भारत को लाभ होगा या नुक़सान? हमारा उत्तर इतना ही है कि यदि हमारे नेताओं ने पिछली भूलों से लाभ उठाया और इस बार बुद्धिमानी के साथ अपने ताश फेंके तो निश्चय ही भारत को उसका अभीष्ट प्राप्त हो सकता है। इंगलैंड का इसी में भला है कि संतुष्ट भारत आफ़त-विपत के काल में सहायक के रूप में उसके साथ रहे न कि भारत में भी उसके विरुद्ध असन्तोष की आग जलती रहे और वह यूरोपीय महायुद्ध में फँसा रहे। एक साथ दो दो मोर्चे लेने को वह सहसा तैयार न होगा और अपनी शक्ति भर भारत को प्रसन्न और संतुष्ट रखने की कोशिश करेगा। बाक़ी हमारे नेताओं की बुद्धि पर निर्भर है कि वह कितना और क्या पाते हैं?

[१६ सितम्बर, १९३८ ई०
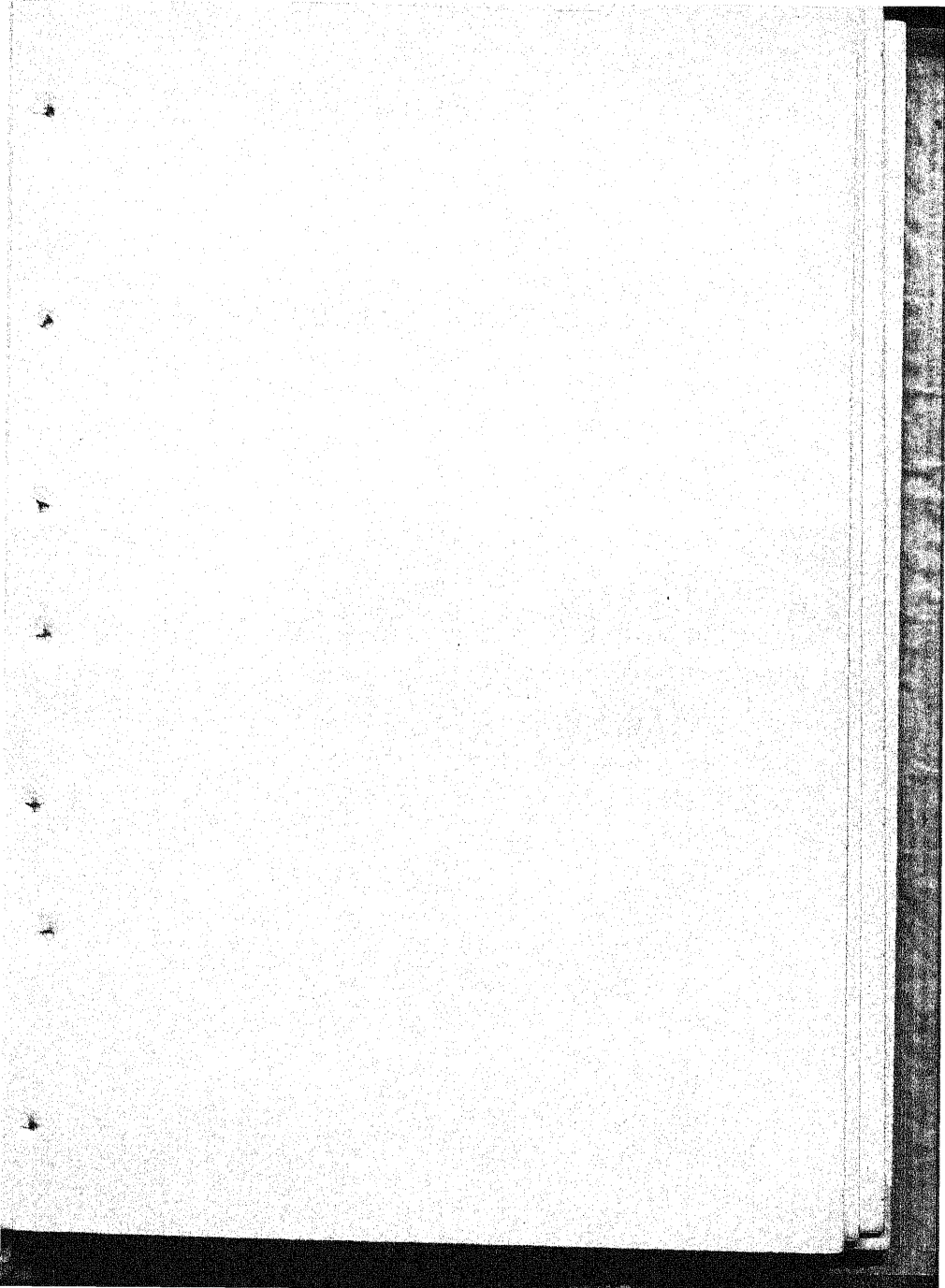
तरुण बन्दी

जिसके जीवन का अरुणोदय, होता 'कारा' में एकान्त ।
स्वातन्त्र्य - समर के सेनानी, हैं अमर हुतात्मा कृष्णाकान्त ॥

—'विरक्त

अवश्यंभावी विश्व-युद्ध

[भावी महाभारत पर अपनी अन्वीक्षण शक्ति से दृष्टिपात करते हुए प्रकाण्ड राजनीतिज्ञ समीक्षक ने लिखा है "कि इस महाभारत से भारत का कल्याण होगा। युद्ध के बादल मँडरा रहे हैं—भारतवासी सावधान हो जायँ! इंग्लैण्ड पैतरे बदल रहा है। यह विश्वयुद्ध विनाश का कारण बनेगा! इसमें कौन-कौन शामिल होंगे यह तो बतलाना ब्रह्मा के वश का नहीं, किन्तु अनुमान यही है कि फ्रांस, रूस और पोलैण्ड और उनके सहायकों की गुटबन्दी हो, दूसरी गुट में जर्मनी जापान रहेंगे। इंग्लैण्ड मौक़ातलब है, वह चाहे तो युद्ध बंद हो सकता है, सिर्फ इतनी घोषणा करने से कि अमुक गुट में रहेगा, किंतु वह ऐसा न करेगा और सन् १९१४ का दाँव फिर खेलेगा।"

बात वही हुई और हो रही है पाठक इस सूक्ष्म निरीक्षण पर ग़ौर करें। —सम्पादक]

अब फिर संसार पर युद्ध के बादल मँडरा रहे हैं। इटली का कहना तो यह है कि युद्ध किसी भी समय, आज, कल या परसों ही छिड़ सकता है। स्ट्रेसा में सम्मेलन हो रहा है। कुछ लोग कह रहे हैं कि इटली, फ्रांस और इङ्गलैण्ड को तुरन्त ही जर्मनी पर चढ़ाई कर देनी चाहिए, उसे उभरने देना ठीक नहीं, किन्तु हमको इसकी आशा नहीं। इङ्गलैण्ड शायद इसमें साथ न देगा। चारों ओर से युद्ध की ज़ोरों से तैयारी हो रही है, सब ही राष्ट्र अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित हो रहे हैं, गुटबन्दी भी ज़ोरों से जारी है और आज नहीं तो निकट भविष्य में संसार को पिछले महा-भारत से कहीं भीषण एक दूसरा महाभारत देखना पड़ेगा।

महाभारत में ही भारत और समस्त संसार का कल्याण है यद्यपि महाभारत सर्वनाश का ही कारण होगा। महाभारत कहाँ होगा, कैसे होगा, उसके कारण क्या होंगे, किन-किन राष्ट्रों का गुट बनेगा, यही सब प्रकट करना संसार-संकट लेखमाला का उद्देश्य है। 'अभ्युदय' के पाठकों को सावधानी से विदेशी समाचारों को ध्यान में रखने का प्रयत्न करना चाहिए। एबीसीनिया में क्या हो रहा है? जबर्दस्ती इटली एबीसीनिया को सता रहा है। एबीसीनिया राष्ट्रसंघ से फैसला चाहता है, वह चाहता है कि राष्ट्रसंघ बीच-बचाव कर दे, किन्तु इटली को यह बिलकुल पसन्द नहीं। वह जानता है कि वह अन्याय पर आरूढ़ है और राष्ट्रसंघ मंचुकों की समस्या के समय की तरह चुप भी रहे तब भी जिनेवा के इतने निकट रहते हुए यह संभव नहीं कि इटली बहुत अधिक अन्याय कर सके, और राष्ट्रसंघ देखता रह जाय। राष्ट्रसंघ का बीच-बचाव इसीलिए इटली नहीं चाहता। इधर इटली ने धीरे-धीरे लुका-छिपाकर युद्ध का सामान सारा वहाँ पहुँचा दिया है और उसने अब छेड़-छाड़ भी शुरू कर दी है। इटली जबर्दस्ती एबीसीनिया से लड़ेगा। फ्रांस और इङ्गलैण्ड इटली से छिपे-छिपे मिले हुए हैं, कम से कम वे इटली को रोकेंगे नहीं और न उसका विरोध ही करेंगे। क्यों? यह समझना कठिन नहीं! फ्रान्स को जर्मनी का भय है, उसे युद्ध दिखाई दे रहा है और वह चाहता है कि भावी महाभारत में इटली फ्रान्स के साथ ही रहे। इङ्गलैण्ड भी इटली को प्रसन्न रखना चाहता है और भावी महाभारत की तैयारी में वह आज तक के इटली के विरोध और मध्य सागर के अपने हितों को भूल-सा गया है। फ्रान्स और इङ्गलैण्ड अफ्रीका के अपने हितों को इटली की नजर करना चाहते हैं। एक ओर दशा यह है दूसरी ओर एबीसीनिया और समस्त अफ्रीका के लिए जापान और जर्मनी चिन्तित होंगे।

एबीसीनिया का प्राय: सारा व्यापार इधर कई वर्षों से जापान के हाथ में है। जापान वहाँ अपना पैर एक तरह से जमा चुका है, इटली के प्रधान होने से जापान के स्वार्थों को धक्का लगेगा और इसलिए जापान इटली का एबीसीनिया तथा अफ्रीका में बढ़ना पसन्द नहीं कर सकता। जर्मनी के उपनिवेश अफ्रीका में थे, पिछले महाभारत में वे छिन गये, जर्मनी अपने उपनिवेशों को भूला नहीं है, आज भी वह उनकी दुहाई दे रहा है। इटली की जड़ अफ्रीका में मजबूत पड़ने देने से जर्मनी को एक नए विरोधी का सामना करना पड़ेगा। जर्मनी इसलिए अफ्रीका में इटली का मजबूत हाना पसन्द नहीं करेगा। अगर इटली ने क़दम बढ़ाया तो जापान और जर्मनी दूर बहुत हैं, वे इटली को रोकने के लिए सहसा पहुँच नहीं सकेंगे। इटली के पक्ष में एक बात यह है किन्तु इसी का फल यह होगा कि महाभारत का युद्ध-क्षेत्र विस्तृत हो जायगा और अगर इटली और उसके सहायकों का अफ्रीका में जापान और जर्मनी नहीं रोक सके तो ये अपना क्रोध अन्यत्र कहीं प्रकट करने को तैयार होंगे। यूरुप के सामने पहली समस्या यह है।

दूसरी समस्या

जर्मनी के उठ खड़े होने की है। इससे समस्त राष्ट्र, विशेष-कर फ्रान्स, इटली और रूस काँप उठे हैं। जर्मनी और पोलैण्ड इस समय एक हैं। पोलैण्ड के साथ होने से प्रबन्ध यह है कि अगर रूस जर्मनी पर चढ़ दौड़ना चाहे तो पहले पोलैण्ड उसे रोकेगा और जर्मन सेना अपनी कार्यवाही के लिए स्वतंत्र रहेगी, वह फ्रान्स पर चढ़ सकती है। वह आष्ट्रिया पर अधिकार जमा या पोलैण्ड की भाँति आष्ट्रिया के साथ हो जाने से इटली पर भी वार कर सकती है। इसी कारण से इटली जर्मनी के पक्ष में

नहीं है, वह आष्ट्रिया की स्वतन्त्रता की रक्षा की दुहाई दे रहा है और चाहता है कि आष्ट्रिया में जर्मन प्रभाव न बढ़े। तात्पर्य इसका यही है कि इस समय यूरुप में फ्रान्स और रूस एक ओर हैं, दूसरी ओर जर्मनी और पोलैण्ड। फ्रान्स यूरुप में सब से जबर्दस्त है। जबर्दस्त का बल कम करना, बलसाम्य को कायम रखना इंगलैण्ड का पुराना खेल है। इंगलैण्ड इसीलिए भीतर-भीतर इधर कई वर्षों से जर्मनी का समर्थक रहा है। फ्रान्स ने जर्मनी के भय से रूस से मैत्री स्थापित कर ली है, जर्मनी ने इसका जवाब जापान की मैत्री से दिया है। रूस अगर पोलैण्ड या जर्मनी पर चढ़ाई करे तो जापान उधर से रूस पर चढ़ दौड़ेगा, साथ ही अगर रूस जापान से छेड़-छाड़ करना चाहे तो इधर से जर्मनी और पोलैण्ड उस पर चढ़ दौड़ेंगे। इस गुट को स्थायी समझना चाहिए। एक ओर फ्रान्स, रूस और उनके सहायक, दूसरी ओर जर्मनी, पोलैण्ड, जापान और इनके सहायक। इंगलैण्ड अभी गुट में स्थायी रूप से शामिल नहीं है। इंगलैण्ड रूस से भी मित्रता स्थापित रखना चाहता है, साथ ही हमको इसमें सन्देह नहीं है कि एक गुपचुप समझौता जापान और इंगलैण्ड में है। यह समझौता मंचुको को धांगा धींगी के समय में हुआ था। कम से कम फ्रान्स वालों की राय यही है कि इंगलैण्ड और जापान में एक समझौता है और समझौते की शर्तों के अनुसार मंचुको में व्यापारिक सुविधा जापान इंगलैण्ड को देगा और इसके बदले में इंगलैण्ड ब्रिटिश साम्राज्य में जापानी व्यापार की राह में रोड़े नहीं अटकायेगा। पिछले दो-तीन वर्षों में भारत में जो युद्ध जापानी और ब्रिटिश व्यापार का चल रहा था, वह अब बन्द है और कारण यही मंचुको का समझौता है। समझौते के अनुसार दक्षिणी चीन में जापान इंगलैण्ड की और उत्तरी चीन में इंगलैण्ड जापान की प्रधानता मानेगा। यही नहीं

मध्य एशिया में इंगलैण्ड अपनी प्रभुता बढ़ाये तो जापान नहीं बोलेगा और जापान साईबेरिया की ओर बढ़े या रूसी सीमा का अतिक्रमण करे तो इंगलैण्ड नहीं चूँ करेगा। अगर इन सब बातों को ध्यान में रखा जाय तो जापान, इंगलैण्ड, जर्मनी, पोलैण्ड एक सूत्र में बंधते हैं, फ्रांस, रूस, इटली और उनके सहायक दूसरे सूत्र में किन्तु इसमें भी कठिनाई है। इंगलैण्ड क्या करेगा, यह अन्त में अपने स्वार्थों को देखकर ही वह तय करेगा। कारण भी इस समय अत्यन्त विकट है। इस समय इंगलैण्ड और उसके उपनिवेशों के स्वार्थ परस्पर विरोधी हैं। सबसे पहले प्रशांत महासागर की समस्या अमरीका और जापान की समस्या है। जापान आज तक जो चीन में करता रहा है उसका एकमात्र उद्देश्य चीनियों को यह दिखाना था कि जिस अमरीका की सहायता के तुम हामी हो, वह कुछ नही है, देखो हम तुमको रौंदते हैं और तुम्हारा सहायक तुम्हारी मदद नहीं कर सकता। अमरीका चीन में जापान की प्रधानता सहन नहीं कर सकता, किन्तु चीनियों ने अब यह देख लिया है कि विदेशियों की सहायता पर निर्भर रहकर हम जापान को तनिक भी नहीं रोक सकते, ऐसी दशा में जापान से मिलकर रहना ही श्रेयस्कर है। यह न भी हो और अमरीका तथा जापान में युद्ध भी हो तो सवाल यह है कि इंगलैण्ड किसके साथ रहेगा, जापान के या अमरीका के ? ठीक याद नहीं, पुस्तक सामने नहीं, किन्तु इसी समस्या पर हमने शायद संसार-सङ्कट की पुस्तक उस समय में खत्म की थी। आज यही समस्या विकट रूप से सामने है। उपनिवेशों का स्वार्थ कहता है कि अमरीका से मैत्री की जाय, इंगलैण्ड का स्वार्थ कहता है जापान से। जनरल स्मट्स इधर कई बार कह चुके कि साम्राज्य का हित इस बात की अपेक्षा करता है कि अमरीका को खुश किया जाय, उसे मिलाया जाय किन्तु इंगलैण्ड का स्वार्थ

इसके विरुद्ध है और अंगरेज़ों को यह पसन्द नहीं। जनरल स्मट्स के पुकार मचाते ही इंगलैण्ड के प्रधान पत्रों ने उनकी राय का खंडन किया और कहा कि यह आवश्यक नहीं। अमरीका की नौ-सेना और प्रशान्त महासागर में उसके अधिकृत द्वीप ऐसे हैं कि वह आस्ट्रेलिया, केनाडा, फिलिपाइन सबको सहज में ही हड़प सकता है। इंगलैण्ड के उपनिवेशों और अमरीका का स्वार्थ इसलिए एक है और वे इसीलिए अमरीका के पक्ष में हैं। दूसरी ओर दक्षिणी चीन में जिसका व्यापार सारा अमरीका के हाथ में वर्षों से है, जापान इंगलैण्ड की प्रधानता स्वीकार करने को तैयार है, साथ ही मंचुको, मंचूरिया और मध्य एशिया में जापान इंगलैण्ड को बहुत कुछ देने को उत्सुक है, ऐसी दशा में इंगलैण्ड का हित जापान के साथ है। अगर इंगलैण्ड अपनी ही ओर देखे तो इंगलैण्ड जापान, जर्मनी का दल बनता है। इंगलैण्ड के कुछ बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ इस बात को ज़ोरों से साफ़-साफ़ कह भी रहे हैं कि इंगलैण्ड को जर्मनी को ख़ुश करना चाहिए। बात साफ़ है। फ्रान्स के अति बलशाली हो जाने से इंगलैण्ड को भी भय है। इस समय यह कहना कठिन है कि इंगलैण्ड अपने उपनिवेशों के स्वार्थों को देखेगा या अपने। इंगलैण्ड जिस दिन यह पूर्ण रूप से तय कर लेगा महाभारत उसी दिन आरम्भ हो जायगा। तब तक में सिंगापूर के नौसेना के गढ़ में जो कुछ कमी है वह भी पूरी हो जायगी। एक ओर एबीसीनिया में बारूद जमा है, चिंगारी की देर है, दूसरी ओर जापान और चीन के एक होने की विभीषिका है, तीसरी ओर जर्मनी के खम ठोककर खड़े हो जाने की बात है। जापान और चीन अगर एक हो गये, और

एशिया एशियावासियों के लिए

है, इसकी पुकार मची तो भूतपूर्व कैसर के "यलो पेरिल"

की बात सामने नजर आयेगी किन्तु अभी इसमें बहुत देर है। हम समझते हैं कि एक बार अभी महाभारत सर्वप्रथम अमरीका तथा जापान के सहायकों में ही होगा और इसके बाद जो महाभारत होगा वह एशिया और यूरुप का द्वन्द होगा। अभी जापान की यह ताक़त नहीं है कि वह अमरीका और इंगलैंड और जर्मनी सब को एक साथ ही चुनौती दे दे। जिस तरह से एबीसीनिया की ओर इटली को, उसी तरह से चीन की ओर अमरीका को अभी ही बढ़ना है और आगामी महाभारत की सम्भावना यही है। प्राय: २२ वर्ष पहले संसार-सङ्कट में हमने यही लिखा था कि अगला महाभारत प्रशान्त महाभारत में अमरीका और जापान में होगा। आज वही समस्या उपस्थित है। अमरीका के लिए आगे बढ़ना और लड़ना जरूरी है। सब राष्ट्र एक होकर राष्ट्र-सङ्घ की सहायता से इस महाभारत को रोक सकते हैं किन्तु ऐक्य होगा नहीं और आज नहीं तो कल युद्ध होगा और होगा। अमरीका ने इसीलिए, जापान को ही बढ़ने न देने के लिए और उसे दबाने के लिए रूस से मैत्री की है। जापान यदि रूस की ओर बढ़े तो अमरीका जापान को दबावेगा और अगर जापान अमरीकन प्रभावक्षेत्र में गड़बड़ मचाना चाहेगा तो रूस जापान पर चढ़ दौड़ेगा। स्थिति इस समय ऐसी दिखाई देती है, होगा क्या यह निकट-भविष्य शीघ्र ही प्रकट करेगा। यहाँ पर यह कह देना आवश्यक है कि रूस जर्मनी और जापान से डर गया है और इसी कारण से वह फ्रान्स, अमरीका और इंगलैंड से सन्धि कर रहा है। इंगलैंड जापान को दबा सकता है क्योंकि जब तक इंगलैंड की सहायता न हो जापान लड़ नहीं सकता। इंगलैंड जर्मनी को भी दबा सकता है किन्तु इंगलैंड धर्म या उदारता की दृष्टि से रूस की सहायता नहीं करेगा। इंगलैंड रूस की सहायता तब ही करेगा जब रूस यह वादा कर दे कि वह

भारत में तथा ब्रिटिश साम्राज्य में समाजवाद का प्रचार नहीं करेगा और न किसी तरह की छेड़छाड़ करेगा। रूस ने शायद यह वचन दे भी दिया है। स्थिति सारी एक तरह से इंगलैंड के हाथ में ही है, वह चाहेगा तो युद्ध होगा नहीं तो नहीं। इंगलैंड यदि आज यह घोषित कर दे कि वह फलाँ-फलाँ के साथ रहेगा तो युद्ध रुक सकता है किन्तु हम समझते हैं वह ऐसा कदापि करेगा नहीं, ठीक १९१४ की ही तरह। उस समय भी अगर इंगलैंड घोषित कर देता कि वह फ्रान्स का साथ देगा तो जर्मनी रुक जाता किन्तु उसने ऐसा किया नहीं, अब भी वह कभी कहेगा नहीं। जो भी हो, समय से सावधान होना, सब बातों से आगाह रहना, सब बातों के ज्ञान से लाभ उठाना यह प्रत्येक भारतवासी का धर्म है और इसी धर्म के समुचित पालन पर हमारा, हमारे देश का, और हमारे बाल-बच्चों का भविष्य निर्भर है। क्या हम आशा करें कि हम सुबुद्धि से प्रेरित होंगे ?

[१६ अप्रैल, १९३५ ई०

विश्व-युद्ध की भूमिका

[सन् १९३५ में बदलती हुई दुनिया को अपनी पैनी नज़र से परख कर विद्वान् लेखक ने भविष्य की कल्पनाओं को सत्य-सिद्ध करने में कमाल किया है।

उनका वक्तव्य उनके विचार भारतीयों को सचेत करने तथा युद्ध की भूमिका के रूप में एक स्थायी साहित्य बन गए। —सम्पादक]

पिछले लेख में हमने इटली और इङ्गलैंड के सम्बन्ध में विशेष कुछ नहीं कहा था। हमने यही कहकर सन्तोष कर लिया था कि स्थिति सारी इङ्गलैंड के हाथ में है, वह अपने निर्णय का एलान कर महाभारत को कुछ काल के लिए स्थगित कर सकता है। हमने यह भी कहा था कि दिल से वह जर्मनी का विरोध और फ्रांस का समर्थन इस समय नहीं करेगा, क्योंकि वह फ्रांस की संसार या समस्त यूरुप में प्रभुता को अपने लिए बहुत खतरनाक समझता है। यह ठीक भी है। पिछले महाभारत के बाद से इङ्गलैंड, फ्रांस की प्रभुता को अनुभव करने लगा है और इसलिए उसकी कोशिश छिपे-छिपे यही रही है कि जर्मनी उभरे, मज़बूत हो और फ्रांस का एक विरोधी पैदा किया जाय। इङ्गलैंड की मज़दूर सरकार ने तो प्रत्यक्ष ही प्रयत्न आरम्भ कर दिया था। उसके पतन का सच्चा इतिहास कभी लिखा गया तो संसार को यह पता चलेगा कि उसके पतन में और राष्ट्रीय सरकार के जन्म में फ्रांस का हाथ पूरा पूरा था। सर फिलिप स्नोडन (अब लार्ड स्नोडन) ने हर्जाने की रक़म की बहस के सम्बन्ध में राष्ट्रों की

समिति में जर्मनी के पक्ष का समर्थन किया था, यही नहीं फ्रांस को कटुभाषा में खरी खोटी सुना दी थी। उस समय प्रधान सचिव रैमजे मैकडानेल्ड भी जर्मनी का ही समर्थन कर रहे थे, वे शायद जर्मनी गए भी थे जर्मनी और आस्ट्रिया के राजीनामे के लिए। फ्रांस का रुपया उस समय बैङ्क आफ इङ्गलैंड में अल्पकालिक-जमा के स्वरूप बहुत जमा था। वह तुरन्त अपनी जमा के स्वरूप में सोना खींचने लगा। उस समय तो ऐसी आशङ्का थी कि अगर फ्रांस इसी तरह एक मास सोना खींचता गया तो बैङ्क आव इङ्गलैंड हील जायगा। इङ्गलैंड के पूँजीपति और व्यापारी घबरा गए, उन्होंने देखा कि मजदूर सरकार की नीति के कारण दिवालिया बनना पड़ेगा और फलतः वे सब मजदूर सरकार के विरुद्ध हो गए। मजदूर सरकार टूटी, नई—नाम की राष्ट्रीय—वास्तव में लकीर की फ़कीर सरकार क़ायम हुई। फ्रांस को ख़ुश करने और राजी रखने की चेष्टा होने लगी यद्यपि लार्ड स्नोडन और उनके साथी अब भी जोरों से यही कह रहे हैं कि इङ्गलैंड को जर्मनी का साथ देना चाहिए। जर्मनी का साथ देने से ही इङ्गलैंड फ्रांस की बढ़ती हुई प्रभुता में प्रतिबन्ध लगा सकता है किन्तु दुनिया की अन्य झंझटें भी हैं, जापान अमरीका का प्रश्न है और साथ ही साथ उपनिवेशों के स्वार्थ का। इन समस्याओं का हल सहज नहीं और इसीलिए इङ्गलैंड जब महाभारत शुरू हो जायगा और वह किसी दल में शामिल हो जायगा तब ही यह मालूम होगा कि वह क्या करेगा। इस समय हम यही कह सकते हैं कि इंगलैंड तैयार नहीं है और उसकी कोशिश रूस ही की भाँति यह होगी कि महाभारत जितने दिनों टल सके, टाला जाय। फिर भी जबानी जमाखर्च में, (जर्मनी को दिखौआ, धमकाने वगैरह में) इङ्गलैंड फ्रांस और इटली को नाराज नहीं करेगा, वह इन दोनों का साथ देगा किन्तु

जर्मनी के विरुद्ध चढ़ाई करने में, उसके चारों ओर घेरा डालकर उसे दबाने में या उसका आर्थिक बायकाट करने में इंग्लैंड कभी साथ नहीं देगा।

इटली

की समस्या दूसरी है। फ्रांस का और इटली का एक प्रकार का सहज वैर है, यद्यपि इटली की स्थिति ऐसी है कि इंगलैंड या फ्रांस के विरुद्ध खड़ा होने का वह साहस नहीं कर सकता। भूमध्य सागर और एशियाटिक समुद्र से इंग्लैंड और फ्रांस अलग-अलग भी और मिलकर भी इटली की हस्ती को मिटा सकते हैं। इटली इस डर से पिछले महाभारत में कुछ दिन तटस्थ रहकर भी इंगलैंड और फ्रांस के साथ हो गया था, यद्यपि जर्मनी की उसकी मैत्री थी और जर्मनी उसपर निर्भर करता था। इटली ने शुरू से ही जर्मनी का साथ इस समय भी दिया है। इटली भी वार्साई के समझौते के उतना ही खिलाफ़ है जितना कि जर्मनी। पिछले महाभारत के बाद बटवारे के समय मलाई, मक्खन इंगलैंड और फ्रांस ने ले लिया था छाछ ही इटली को मिला था। वार्साई की सन्धि टूटे इसी में इटली का स्वार्थ था और इसीलिए मुसोलिनी बराबर जर्मनी का साथ देते थे। सेना सगंठित करने की आज्ञा उसे दी जाय, हर्जाने का बोझ कम किया जाय, जर्मनी की समानता स्वीकार की जाय यह सब इटली कहता था, इंगलैंड भी यही चाहता था, सिर्फ इसलिए कि फ्रांस का एक प्रतिद्वन्द्वी तैयार किया जाय। इटली जानता है कि फ्रांस उसे कभी बढ़ने नहीं देगा। दो तीन वर्ष पहले तो दुनिया यह समझने लगी थी कि जर्मनी, इटली, रूस और इंगलैंड का एक दल बनेगा और फ्रांस, पोलैंड, रुमानिया, जूगोस्लाविया, जेकोस्लाविया, बेलजियम आदि का एक गुट। जर्मनी के रण विशेषज्ञ बूढ़े जेनरल लूडन डार्फ ने एक पुस्तक ही 'भावी महाभारत'

के नाम से लिख दी थी क्योंकि उनकी ख्याल था कि महाभारत १६३२ में पहली मई को शुरू हो जायगा। फ्रांस ने बड़ी बुद्धिमत्ता से यूरुप को सदा काबू में रखने के लिए अपना दल तैयार किया था, सब ही उससे सशङ्कित थे। इटली के जानी दुश्मन इस गुट में शरीक थे और इसी लिए इटली जर्मनी को उभार रहा था। शायद घटना-चक्र इसी तरह से घूमता किन्तु

हिटलर

ने यूरुप की स्थिति और नक्शे को ही रंग-मंच पर आते ही बदल दिया है और अब दुनिया एकदम दूसरी हो गई है। सच तो यह है कि जिस तरह महाभारत के पूर्व और महाभारत के बाद के बड़े बड़े पोथे यूरोप में तैयार हो गये हैं उसी तरह से अगर कोई चाहे तो हिटलर के पूर्व और हिटलर के बाद के बड़े-बड़े पोथे इस समय लिख सकता है। हिटलर ने यूरुप की परिस्थिति को ही दूसरी कर दिया है। उदाहरण-स्वरूप हम हम एक दो बातें कह देना चाहते हैं। फ्रांस ने जर्मनी को सदा दबाये रखने के लिए पोलैंड के राष्ट्र की सृष्टि की थी। पोलैंड जर्मनी का घोर शत्रु भी था, वह समझता था कि जर्मनी जिस दिन पुष्ट हुआ, उसे खा डालेगा। वह इसलिए यह चाहता ही न था कि जर्मनी को कभी सर उठाने का अवसर दिया जाय। जर्मनी के सर उठाते ही पोलैंड ने फ्रांस से कहा कि हम लोगों को भावी भारत को रोकने के लिए तुरन्त ही जर्मनी पर चढ़ दौड़ना चाहिये, फ्रांस ने ज़बर्दस्ती चढ़ दौड़ने का विरोध किया। पोलैंड को फ्रांस की बात पसन्द नहीं आई, फ्रांस के रुख़ को उसने अपने लिए अपमान जनक समझा, उसने सोचा, मैं कुछ नहीं, मेरी राय कुछ नहीं, मैं फ्रांस का पुछल्ला मात्र ही हूँ और वह फ्रांस से रुठ गया। जर्मनी ने इस स्थिति से लाभ उठाया। जर्मनी

के लिए मेमल, डेनज़िग आदि को सार की भाँति अपने कब्जे में करना जरूरी है, पोलैंड भला इसे कैसे सहन कर सकता है, फिर भी जर्मनी ने पोलैंड से सन्धि कर ली और कह दिया कि दस वर्ष तक वह डेन्जिग के प्रश्न को नहीं उठायेगा। पोलैंड को जर्मनी से यही भय था, इसके दूर होते ही वह जर्मनी का साथी हो गया। हिटलर ने एक ओर अपनी शक्ति की इस तरह वृद्धि की, दूसरी ओर आष्ट्रिया को नाज़ी अधिकार में लाने की चेष्टा से इटली उससे नाराज़ हो गया। इटली, आष्ट्रिया में जर्मनी की प्रधानता नहीं देख सकता, क्योंकि जर्मनी हंगरी, आष्ट्रिया आदि के एक होते ही इटली का जीवन हर मिनट संकट में रहेगा, जर्मनी आष्ट्रिया जब ही चाहें इटली को गर्दन नाप सकते हैं। जब से हिटलर की नजर।

आष्ट्रिया की ओर

घूमी है, इटली, यही चिल्ला रहा है कि आष्ट्रिया की स्वतन्त्रता की रक्षा करना हम लोगों का कर्तव्य है। फ्रांस और इङ्गलैंड भी इस सम्बन्ध में इटली का साथ देते हैं क्योंकि इन दोनों को भी भय है कि आष्ट्रिया के मिलते ही जर्मनी फिर एक बार १९१४ का जर्मनी हो जायगा। पिछले पांच ६ महीनों से यह हाय हाय मची हुई है और इस समय स्ट्रासा में जो फ्रांस, इटली, इङ्गलैंड की बहस जारी है उसमें यह सवाल भी पेश है। तात्पर्य यह है कि फ्रांस का गाढ़ा मित्र और जर्मनी का शत्रु पोलैंड अब फ्रांस का नहीं जर्मनी का मित्र है, दूसरी ओर जर्मनी का मित्र इटली अब फ्रांस के निकट हो रहा। इटली को खुश करने के लिए ही अफ्रीका में फ्रांस इटली को बढ़ने दे रहा है और इङ्गलैंड भी इटली के मार्ग में बाधक नहीं है। ६ मास पहले यह सम्भव न था। जर्मनी ने फ्रांस का विरोध रहते हुए भी इगलैंड

और इटली की सम्मति से ही हर्जाने की रकम से नजात पाई, उसने समानता भी राष्ट्रों की स्वीकार करा ली और अब उसने सैनिक शिक्षा अनिवार्य करा दी है और खम ठोक कर खड़ा हो गया है। जर्मनी का रुख समझ कर निरस्त्रीकरण कांफरेंस और राष्ट्र-संघ से उसे बिदा होते देख यह समझ कर कि वह चंगुल से निकल गया, फ्रांस के रूस को राष्ट्र-संघ में लाया और उससे मैत्री स्थापित कर ली है। इटली अन्त में क्या करेगा, किस गुट से मिलेगा यह अब भी कहना कठिन है, इङ्गलैंड की भाँति वह भी समय पर अपने कोरे स्वार्थ से ही प्रेरित होगा यद्यपि हमारा ख्याल है कि इटली इङ्गलैंड का मुँह ताकेगा और जिधर इङ्गलैंड जायगा इटली उसी का पदानुसरण करेगा क्योंकि इटली की नौ सेना कुछ नहीं है और इङ्गलैंड मध्य सागर से उसकी नौ सेना को नष्ट कर सकता है। आगे जो होने वाला है, उसकी भूमिका की भाँति अभी तक सार में हमने बातें कह दी हैं। यदि प्रेमी पाठक अब तक की लेख-माला की सब बातों को ध्यान में रखेंगे तो भावी महाभारत की समस्याओं को समझना उनके लिए कठिन न होगा। हमारी प्रार्थना पाठकों से यही है कि राष्ट्रों परिस्थिति और उनकी दाँव पेंच की चालों को समझने में वे दिलचस्पी लें, संसार में रहते हुए, महाभारत अगर हुआ तो उसके प्रभाव से हम बच नहीं सकते। समस्त संसार ही लड़ने लगेगा, यत्र-तत्र-सर्वत्र घमासान मच जायगा, उस समय हमारी दशा क्या होगी यह सब तो विचारने की ही बातें हैं।

[२३ अप्रैल, १९३५ ई०

संसार-रंग-मंच का महत्त्वपूर्ण नाटक

[स्ट्रेसा में फ्रांस इंगलैण्ड और इटली ने जो कुछ तय किया था उसे समझने में उस समय बड़े-बड़े धुरन्धर राजनीतिज्ञ और अनुभवी सम्पादक भी चूक गए थे। अभ्युदय के क्रांतदर्शी सम्पादक उस समय स्ट्रेसा कान्फ्रेंस के रहस्य का उद्घाटन करते हुए जो भविष्यवाणी की है वह याथातथ्य है। इतना ही नहीं विद्वान् लेखक ने सम्पादकों और राजनीतिज्ञों का पथ-प्रदर्शन भी किया। —सम्पादक]

अभी तक हम गुटबन्दियों का कुछ ज़िक्र करते रहे हैं, यद्यपि हमने यह भी साफ़-साफ़ कह दिया था कि इङ्गलैण्ड और इटली अन्त समय तक अपने स्वार्थों की चिन्ता में रहेंगे, और बहुत समझ-बूझ कर सबसे बाद खुल्लमखुल्ला युद्ध के लिए किसी गुट में शरीक होंगे। हम यहाँ पर इतना और कह देना चाहते हैं कि युद्ध के पहले का यूरुप की राजनीति और कूटनीति वर्तमान की राजनीति और कूटनीति से एकदम भिन्न है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति और स्थिति का बड़ा से बड़ा विशेषज्ञ भी ठीक अन्दाजा इस बात का नहीं लगा सकता कि युद्ध के समय कौन-कौन राष्ट्र किधर और किनके साथ होंगे। मिसाल के लिए यही देख लीजिए कि हमने कहा है कि जर्मनी और पोलैण्ड इस समय एक हो गए हैं, दस वर्षों के लिए दोनों में अच्छा समझौता हो गया न किन्तु इसी के साथ ही यह हम जानते हैं, कि पोलैण्ड और रूस में भी सन्धि है और रूस पोलैण्ड और जर्मनी की सन्धि से तनिक भी विचलित नहीं। रूस भी जानता है और

पोलैण्ड भी कि जर्मनी ने केवल इस समय गौं की सन्धि कर ली है और इस सन्धि का विश्वास तनिक भी नहीं किया जाना चाहिए। इसके साथ ही लोगों का यह भी विश्वास है कि समय पड़ने पर यह असम्भव नहीं कि रूस और पोलैण्ड एक हो जायँ। इसी तरह से इङ्गलैण्ड के कुछ राजनीतिज्ञ भी हिटलरशाही को देखकर फ्रांस के निकट होना पसन्द करते हैं। और इसीलिए इङ्गलैण्ड किसी भी समय फ्रांस की ओर कूद सकता है। ख़बर तो यह भी है कि सर जान साइमन और बाल्डविन ने १९१४ सा ही समझौता फ्रांस से कर लिया है। वर्तमान कूटनीति का माया-जाल एक अँधियाले जङ्गल की भाँति है, जिसमें सूर्य की रश्मियों को कहीं भी स्थान नहीं है और न प्रकाश का कोई अन्य ही साधन है। ऐसी दशा में यात्री सर्वथा उपायहीन होकर केवल अन्दाजे से कदम रखकर आगे बढ़ सकता है, भाग्य के बल से ही वह यात्रा पूरी कर सकता है, साथ ही अभाग्य से वह कहीं अंधकारमय कूप में भी गिर पड़ सकता है।

सिध्यन्ति कर्मसु महत्स्वमियन्नियोज्याः,
सम्भावनागुण मवेहितमीश्वराणां।
किंवा भविष्यत्यरूणस्तमसां विभेत्ता,
नो चेत् सहस्त्रकिरणो धुरिना करिष्यत्॥

यह सच है कि १९१४ और १९३५ में बड़ा अन्तर है, किन्तु ग़ौर से देखने से प्रकट यही होता है कि क्षितिज दोनों का ही लालिमामय है। पिछला साल यूरुप के इतिहास में १९१३-१४ की तरह ही महत्त्वपूर्ण रहा है। फ्रांस में स्टेविस्की का भंडाफोड़, पेरिस की सड़कों का रक्तरंजित होना, वियना में साम्यवादियों की क्रांति और उसका पशुतामय दमन, निरस्त्रीकरण कान्फ्रेंस का अन्त, फ्रांस और रूस की मैत्री, आष्ट्रिया में डालफस हत्याकांड,

बर्लिन और म्यूनिच में हिटलरशाही का नंगा नृत्य और यहूदियों, कैथलिकों और विरोधियों का शमन, एक से एक बढ़कर घटनाएँ हैं। जहाँ एक ओर बारूद-गोला सब तैयार हैं और धड़ाके की हर मिनट आशंका है, वहाँ स्वरक्षा का ज़बर्दस्त सवाल सब के सामने है। सब जानते हैं कि भिड़ने में सर्वनाश है और इस-लिए राष्ट्र तरह भी दे जाते हैं। आष्ट्रिया में डालफस की हत्या से इटली आपे से बाहर हो गया था। आष्ट्रिया की स्वतन्त्रता की रक्षा को कायम रखने का उत्तरदायित्व इटली, फ्रांस और इंगलैंड पर एक समान है, किन्तु इटली बिना इंगलैण्ड और फ्रांस से सलाह किये हुए ही, अपनी सेना ले आष्ट्रिया की सीमा पर चढ़ दौड़ा। मुसोलिनी ने तार भेज कर प्रिंस स्टारहमबर्ग को कड़ी बातें भी सुना दीं। असम्भव नहीं था कि उस घड़ी के पहले के मित्र जर्मनी और इटली भिड़ जाते; किन्तु मामला ठंढा हो गया। दुनिया का ख्याल यही था कि मुसोलिनी हिटलर मित्र हैं, कुछ दिनों पहले दोनों मिले थे और दोनों में घुल-घुल कर बातें हुई थीं, इसी के साथ ही साथ हमको मि० बाल्डविन की ३० जुलाई के कामन्स सभा के इस कथन को भी ध्यान में रखना चाहिये कि अब इंगलैण्ड की सीमा डोवर की सफ़ेद पहाड़ियाँ नहीं, राइन है। इसका अर्थ यही है कि जर्ममी के विरुद्ध इंगलैण्ड और फ्रांस एक हैं। जिस यूरुपीय संसार में इस क्षण का मित्र, घड़ी भर बाद का शत्रु, और कल का मित्र हो सकता है, उसके सम्बन्ध में राष्ट्रों की गुटबन्दी का कुछ भी अन्दाज़ा लगा सकना कठिन काम है। सन् १९१४ की भाँति ही जर्मनी सैनिकता का झंडा लेकर सामने खड़ा हो गया है, १९१४ की ही तरह मित्रों— जर्मनी और इटली—में काफ़ी मनमोटाव हो गया है, १९१४ की ही भाँति आष्ट्रिया की दशा आज भी करुणाजनक है, १९१४ की तरह ही रूस और फ्रांस एक हैं, इंगलैण्ड फ्रांस अलग नहीं,

और इन सब के साथ ही बालटिक, बालकन राष्ट्रों और स्लाव, क्रोट, मंगायर, सर्ब जातियों का सहज बैर है।

फ्रांस के शेर क्लिमैन्सो ने एक बार कहा था कि शान्ति भी युद्ध का ही एक दूसरा रूप है, संसार के लिए क्लिमैन्सो की बात ठीक हो या नहीं, किन्तु यूरुप की १६१६-३४ की शान्ति तो युद्ध का रूपान्तर मात्र ही रही है। विजेताओं ने विजितों के साथ बैर कैसे निकाला, विजित राष्ट्रों ने चंगुल से अपनी जान बचाने की किस तरह चेष्टाएँ कीं, इसी के समुचित वर्णन का दूसरा नाम यूरुप का १६१६-३४ का इतिहास है।

हम लोगों को इसलिए १६१६-३४ के काल पर एक बिहंगम दृष्टि डालनी होगी, इस काल के समझौतों पर एक नज़र डालनी होगी और राष्ट्रों की स्थिति पर कुछ विचार करना होगा और इन्हीं बातों के आधार पर इसका कुछ अन्दाज़ा लगाना होगा कि किन-किन राष्ट्रों का गुट बनेगा।

इन बातों की चर्चा को आज यहीं पर समाप्त कर हम पाठकों का ध्यान संसार के रंगमंच के सब से महत्त्वपूर्ण नाटक की ओर खींचना चाहते हैं। हम लोग दुनिया की बातों पर निगाह नहीं रखते, गुलाम होने से, साथ ही अज्ञान के कारण हम लोग कितनी बातों को सहसा समझ भी नहीं पाते। शासन खोकर हम लोग शासन सम्बन्धी राजनीति को समझने की बुद्धि भी खो बैठे हैं। स्ट्रेसा में फ्रांस, इंगलैण्ड और इटली ने जो तय किया है, इसे कितने भाई समझ पाए हैं। बड़े लोग जिस बात को नहीं समझ पाते, उसे हमारे साधारण भाई कैसे समझ सकते हैं। इन बेचारों का तो ज्ञान-भण्डार बहुत थोड़ा है। हमारे समाचारपत्र भी क्या हैं, हम क्या कहें! कुसूर पत्रों या सम्पादकों का भी नहीं। जितना वे करते हैं, वही उनके लिए कम नहीं। एक गरीब

सम्पादक के माथे ही सब कुछ रहता है, वह चलता काम करता रहता है। विशेष रूप से किसी विषय का ज्ञान प्राप्त करने का उसे समय कहाँ। वह विशेषज्ञ भी नहीं होता। हिन्दी के एक प्रसिद्ध दैनिक के "स्ट्रेसा के निर्णय" शीर्षक अग्रलेख से हम नीचे की पंक्तियाँ उद्धृत कर रहे हैं:—"प्रश्न यह था कि इन गुप्त कान्फ्रेन्स में ब्रिटेन और इटली जर्मनी के विरुद्ध फ्रान्स को सैनिक सहायता देने का वचन देते हैं या नहीं। इस प्रकार का वचन फ्रान्स को नहीं मिला है और राष्ट्रसंघ में होने वाले वाद वा विचार का व्यावहारिक दृष्टि से तदृश महत्त्व भी नहीं है"। इन पंक्तियों को पढ़कर क्रोध भी आया और हँसी भी। स्ट्रेसा की कान्फ्रेन्स क्यों हुई, और उसमें हुआ क्या, सम्पादकजी को कुछ नहीं मालूम। वे समझते होंगे कि जर्मनी के सैनिकता के प्रदर्शन से घबराकर इटली, फ्रान्स और इङ्गलैण्ड ने मिलकर सलाह की है। सब से आश्चर्य की बात यह है कि वे समझते हैं कि फ्रान्स को इटली और इङ्गलैण्ड की सैनिक सहायता का वचन नहीं मिला।

हम ऊपर कहीं बतला चुके हैं कि इङ्गलैण्ड बाल्डविन और सर जान साइमन के मुँह से फ्रान्स को पहले ही वचन दे चुका है। अगर रैमज़े मेकडानेल्ड हटे तो आशा यही है कि बाल्डविन ही प्रधान सचिव होंगे, यह न भी हो तो बाल्डविन का निश्चय जब तक वे राजनीतिक क्षेत्र में हैं, एक असर रखेगी और कोई भी सरकार शक्ति में हो, बाल्डवित की बात हँसी में नहीं उड़ा देगी। सम्पादक जी पूछ सकते हैं कि फ्रांस को अगर इङ्गलैण्ड से वचन प्राप्त ही होता तो फ्रांस इतना उद्विग्न क्यों होता? वह बार-बार इस बात की चेष्टा क्यों करता कि इंगलैण्ड वचन-बद्ध हो जाय और जर्मनी के विरुद्ध उसकी सहायता करे। सम्पादक जी तथा इस लेखमाला के पाठकों की जानकारी के लिए हमको १६१६

के बाद के इंगलैण्ड और फ्रान्स के सम्बन्ध पर नज़र डालनी होगी और कुछ राजनीतिक प्रगतियों को समझना होगा। युद्ध के बाद मित्र-दल, नहीं तो उसकी सन्धियाँ एकदम समाप्त हो गईं। १९१९ में इंगलैण्ड किसी भी सन्धि या समझौते से इसके लिए बाध्य नहीं था कि जर्मनी के चढ़ाई करने पर बेलजियम या फ्रान्स की सहायता के लिए वह सेना या नौ सेना ले दौड़े। सन् १९१९ से १९३२ तक इंगलैण्ड ने ऐसी सन्धि स्थापित करने का कोई प्रयत्न नहीं किया। यही नहीं, फ्रान्स के ऐसे प्रयत्नों की भी वह अवहेलना करता था। इस काल में इंलैण्ड जर्मनी की ओर झुका हुआ था। इस सम्बन्ध में राष्ट्रों में एक ही समझौता था और वह था १९२६ का 'लोकार्नो का समझौता'। इस समझौते का अर्थ यह था कि जर्मनी, फ्रान्स और बेलजियम की सीमाओं का पशुबल से ही कोई तनिक भी परिवर्तन न करे, 'राइनलैंड पैक्ट' पर हस्ताक्षर करने वाले इंगलैण्ड और इटली ने यह वचन दिया था कि ये दोनों अन्य राष्ट्रों के साथ उस राष्ट्र के शत्रु बन जायेंगे जो पशु बल से सीमा का परिवर्तन करना चाहेगा। मतलब यह था कि यह समझौता फ्रान्स और बेलजियम के लिए वैसा ही था, जैसा जर्मनी के लिए। जो भी आक्रमण प्रथम करता उसके विरुद्ध दूसरे राष्ट्र डट जाते। फ्रांस इससे संतुष्ट कैसे हो सकता था। समझौते की लड़ी में भी एक कड़ी ढीली थी। पश्चिमीय सीमाओं की रक्षा का ही इसमें बन्धेज था, जर्मनी अगर पूर्व की ओर बढ़ना चाहे तो कोई प्रतिबन्ध न था। जर्मनी इससे खुश था किन्तु फ्रांस सदा से इस प्रयत्न में था कि पूर्वीय सीमाओं के सम्बन्ध में भी ऐसा ही कोई समझौता हो जाय। फ्रांस ने इस प्रश्न को निरस्त्रीकरण कान्फरेंस के समय में भी उठाया था, किन्तु इंगलैंड तथा इटली फ्रांस की बातों को अनसुनी-सी कर

देते थे। सन् १६३३ तक यही दशा रही, किन्तु हिटलर के रंग-मंच पर आते ही, विशेषकर नाजी क्रांति के बाद से इंगलैंड और इटली के रुख में परिवर्तन हुआ। इंगलैंड के कुछ राजनीतिज्ञ और निवासी दोनों ही, समझने लगे कि फ्रांस की बातों में तथ्य है, वह भय से ही त्रस्त नहीं है; जर्मनी से यूरुप की रक्षा का प्रबन्ध करना ही होगा। निरस्त्रीकरण में फ्रांस जैसे रोड़े अटका रहा था, उससे सब ही असन्तुष्ट थे और एक विशेषज्ञ के शब्दों में तथ्य बात तो यह है कि यदि हिटलरशाही की सरकार नहीं, वरन् कोई दूसरी जर्मन सरकार राष्ट्र-संघ और निरस्त्रीकरण कान्फ़रेंस से अलग हुई होती तो दुनिया की सहानुभूति उनके साथ होतीं। हिटलरशाही देख कर ही फ्रेंच सचिव मि० बार्थो की बातों का इङ्गलैंड के राजनीतिज्ञों पर अच्छा असर पड़ा और सर जान साइमन कामन्स सभा में १३ जुलाई को कह सके कि ब्रिटिश सरकार ने नैतिक भाव से रूस और फ्रान्स में पूर्वीय सीमाओं संबंधी समझौते के समर्थन का वचन मि० बार्थो को दे दिया है। किन्तु इंगलैण्ड खुद नहीं शरीक होगा। स्ट्रेसा कान्फ़रेंस के समय में दूसरे या तीसरे दिन यह समाचार आया था कि सर जान साइमन ने राष्ट्रों की सभा में यह कह कर कि जर्मनी कुछ शर्तों के साथ पूर्वीय लोकार्नो के समझौते के लिए तैयार है, एक बम सा फेंक दिया था। बहुत से लोग इसके अर्थ और उद्देश्य को समझे ही न होंगे। पहले का लोकार्नो का समझौता केवल पश्चिमीय सीमाओं के सम्बन्ध में था। फ्रांस पूर्वीय सीमाओं की दुहाई दे रहा था, वह चाहता था कि जिस तरह से जर्मनी पश्चिम की ओर नहीं बढ़ सकेगा और उसके बढ़ने पर इंगलैण्ड और इटली, फ्रांस और बेलजियम की सहायता के लिए बढ़ आवेंगे, उसी तरह से पूर्व की ओर जर्मनी बढ़ सके, इस-लिए भी समझौता हो जाना चाहिए। इंगलैण्ड स्वयं इस समझौते

के पक्ष में न था, वह हर तरफ से जर्मनी को घेरे में रखने के प्रबन्ध में शरीक नहीं होना चाहता था, वह और इटली भी जर्मनी के पक्ष में थे, किन्तु हिटलरशाही को देखते ही १९३४ में इंगलैण्ड इसके लिए राजी हो गया कि फ्रांस, पोलैंड और रूस में एक पूर्वीय लोकार्नो स्थापित हो जाय। इंगलैण्ड खुद नहीं शरीक हुआ; क्योंकि उसे कामन्स सभा, मजदूर दल और लार्ड बेवर ब्रुक के दल को भी संतुष्ट रखना था। डर यह था कि खुल्लमखुल्ला फ्रान्स के साथ इस तरह के समझौते में शरीक होने से इंगलैंड का सार्वजनिक मत विरुद्ध हो जायगा और लोग कहने लगेंगे कि फ्रांस के कारण फिर इंगलैंड को कटना मरना होगा। जर्मनी विरुद्ध और फ्रांस के पक्ष में किस तेज़ी से इंगलैण्ड बढ़ रहा था, उसका अन्दाज़ा इसी बात से लग सकता है कि सर जान साइमन ने उपर्युक्त बात १३ जुलाई को कही थी। उनको कहना पड़ा था कि इंगलैण्ड ख़ुद शरीक नहीं होगा, किन्तु सतरह दिन बाद ही ३० जुलाई को मि० बाल्डविन ने कहा कि इंगलैण्ड की सीमा डोवर सफ़ेद पहाड़ियाँ नहीं, राइन है और इसका अर्थ यही था कि इंगलैण्ड और फ्रांस में कुछ न कुछ समझौता ज़रूर हो गया। बाल्डविन साहब की स्पीच से फ्रांस में प्रसन्नता और बर्लिन में क्रोध का संचार हुआ, किन्तु इंगलैण्ड में मतभेद और विरोध भी भीतर-भीतर काफ़ी बढ़ा। कुछ लकीर के फ़कीर चाहते थे साफ़ साफ़ कह दिया जाये कि इंगलैण्ड फ्रांस का साथ हर दशा में देगा, जनता के बहुमत का कहना यह मालूम होता है कि यूरुप के मामलों में इंगलैण्ड काफ़ी फँसा हुआ है और अब किसी नूतन फँसना चाहिये, समय पर जैसी आवश्यकता हो, उस तरफ वह आचरण करे, अभी से गुटबन्दी में पड़ने की आवश्यकता नहीं। लार्ड बेवर ब्रुक के साथियों का कहना है कि इंगलैण्ड युरुप के

के पक्ष में न था, वह हर तरफ से जर्मनी को घेरे में रखने के प्रबन्ध में शरीक नहीं होना चाहता था, वह और इटली भी जर्मनी के पक्ष में थे, किन्तु हिटलरशाही को देखते ही १६३४ में इंगलैण्ड इसके लिए राजी हो गया कि फ्रांस, पोलैंड और रूस में एक पूर्वीय लोकार्नो स्थापित हो जाय। इंगलैण्ड खुद नहीं शरीक हुआ; क्योंकि उसे कामन्स सभा, मजदूर दल और लार्ड बेवर ब्रुक के दल को भी संतुष्ट रखना था। डर यह था कि खुल्लमखुल्ला फ्रान्स के साथ इस तरह के समझौते में शरीक होने से इंगलैंड का सार्वजनिक मत विरुद्ध हो जायगा और लोग कहने लगेंगे कि फ्रांस के कारण फिर इंगलैंड को कटना मरना होगा। जर्मनी विरुद्ध और फ्रांस के पक्ष में किस तेजी से इंगलैण्ड बढ़ रहा था, उसका अन्दाजा इसी बात से लग सकता है कि सर जान साइमन ने उपर्युक्त बात १३ जुलाई को कही थी। उनको कहना पड़ा था कि इंगलैण्ड खुद शरीक नहीं होगा, किन्तु सतरह दिन बाद ही ३० जुलाई को मि० बाल्डविन ने कहा कि इंगलैण्ड की सीमा डोवर सफेद पहाड़ियाँ नहीं, राइन है और इसका अर्थ यही था कि इंगलैण्ड और फ्रांस में कुछ न कुछ समझौता जरूर हो गया। बाल्डविन साहब की स्पीच से फ्रांस में प्रसन्नता और बर्लिन में क्रोध का संचार हुआ, किन्तु इंगलैण्ड में मतभेद और विरोध भी भीतर-भीतर काफी बढ़ा। कुछ लकीर के फकीर चाहते थे साफ साफ कह दिया जाये कि इंगलैण्ड फ्रांस का साथ हर दशा में देगा, जनता के बहुमत का कहना यह मालूम होता है कि यूरुप के मामलों में इंगलैण्ड काफी फँसा हुआ है और अब किसी नूतन फँसना चाहिये, समय पर जैसी आवश्यकता हो, उस तरफ वह आचरण करे, अभी से गुटबन्दी में पड़ने की आवश्यकता नहीं। लार्ड बेवर ब्रुक के साथियों का कहना है कि इंगलैण्ड युरुप के

झगड़ों से एकदम दूर हो जाय, नये समझौतों को करने की तो बात ही क्या, अब तक उसने कर रखे हैं, उनको भी उसे तोड़-फोड़ देना चाहिये। लार्ड राथरमीयर के दल का कहना है कि तटस्थ रहना, निरस्त्रीकरण की फ़िक्र करना बेजा है, इंगलैण्ड को शस्त्रीकरण करना चाहिये, और एलान कर देना चाहिए कि हम फ्रांस के साथ हैं, जर्मनी इसी से दब सकता है, ब्रिटिश मंत्रिमंडल की स्थिति मध्यवर्ती है उसका कहना है कि इंगलैण्ड फ्रांस के प्रजातंत्र और पार्लामेंटरी शासन को नहीं कष्ट होने दे सकता। साथ ही फ्रांस भी इंगलैण्ड के पार्लामेंटरी शासन और प्रजासत्तावाद को मिटने नहीं दे सकता। इंगलैण्ड और फ्रांस का एक होना ही ठीक है। भीतरी दशा यह है किन्तु मजदूर दल, शान्तिवादी, युद्ध के विरोधी, समाजवादी, कम्यूनिस्ट इंगलैण्ड और फ्रांस की मित्रता का एलान होते ही विरोध की आंधी बहा देते, संसार का मत भी कुछ टेढ़ी-मेढ़ी बातें कहता ही, इसलिए सार्वजनिक मत को पक्ष में करना था और इसकी कोशिश थी कि किसी तरह अर्थ की सिद्धि हो जाय। जरूरी यह था कि इंगलैण्ड और फ्रांस दो ही को नहीं वरन् इंगलैण्ड फ्रांस और इटली की मित्रता से स्थान की घोषणा की जाय। यह भी सीधे सादे तरीके से नहीं, क्योंकि दुनियां कहती कि पुराने मित्र जर्मनी के शत्रु अकारण ही जर्मनी का गला घोंटने के लिए एक हो गए हैं। डाकुओं का दल फिर संगठित हो गया है। इस टीका से बचने का उपाय एक ही था और वह यद्यपि यूरुप की भलाई का और शान्ति का प्रश्न हो सब प्रधान राष्ट्र निमंत्रित हों और जर्मनी खुद ही शरीक होने से इन्कार कर दे और दुनिया यह देखे कि जर्मनी खुद ही अशान्ति चाहता है, वह सन्धि, समझौता और मेल की बातों के लिए तैयार नहीं, वह झगड़े पर आमादा है और इसलिए यूरुप में शान्ति कायम रखने का एकमात्र उपाय

यही है कि इंगलैंण्ड, फ्रांस और इटली का एक गुट बन जाय। इंगलैण्ड के सामने समस्या यह थी, वह जानता था कि कामन्स सभा भी इंगलैण्ड और फ्रांस के समझौते के पक्ष में वोट न देगी। सन् ३४ में ही एक दूरदर्शी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के विशेषज्ञ ने लिखा था—An exclusive guarantee by Britain of France's security against attack by Germany, confirming and emphasising the Joint British Italian guarantee given in the Locarno Treaty, would be resisted by a majority of the present House of Commons. A collective Anglo-French-Italian pledge of mutual defence against German aggression, all the easier to negotiate, if the present negotiations for an Eastern Locarno break down through the refusal of Germany, remains there as one possible solution of critical problem. एकमात्र उपाय ही यही था कि दिखाया जाय कि जर्मनी राजी नहीं होता और फलतः उपाय इंगलैंड, फ्रांस और इटली की मैत्री का ही है। हमारे पाठक अब समझ गए होंगे कि सर जान साईमन के मुँह से जर्मनी ने स्ट्रेसा की कान्फरेन्स में यह क्यों कहलाया कि यह पूर्वीय सीमाओं के सम्बन्ध में समझौता कुछ शर्तों के साथ करने को तैयार है। स्ट्रेसा कान्फरेन्स के बारे के यह समझना कि इंगलैंण्ड और इटली फ्रांस की सहायता के लिए बचन-बद्ध नहीं है भ्रम है। इस समय इंगलैण्ड और इटली दोनों ही जर्मनी के विरुद्ध फ्रांस ही की नहीं, पोलैण्ड और रूस की भी सहायता के लिए तैयार हो जायँगे। सर जान साइमन और मि० ईडन व्यर्थ ही

बर्लिन और मास्को की सैर नहीं करते रहे हैं। जो कुछ हुआ वह दिखानेवाले हाथी के दाँत थे, खानेवाले दाँत मुँह में बन्द थे और वे स्ट्रेसा कान्फरेंस के गर्भ में सुरक्षित हैं। जिनको देखने और समझने में बहुत से भाई समर्थ नहीं हुए। स्ट्रेसा कान्फरेंस का अर्थ और उद्देश्य ही यही था कि राष्ट्रसंघ की सभा के पहले ही सब कुछ तय हो जाय और राष्ट्र-संघ 'टुकटुक दीदम दम न कशीदम' की कहावत को ही चरितार्थ करे। इससे एक फल यह निकल सकता है कि जर्मनी यह देखकर कि इंगलैण्ड, फ्रांस, इटली, रूस सब ही उसके विरुद्ध हो जायँगे, आगे बढ़ने से रुक जाय और आस्ट्रिया में कोई गड़बड़ करने का साहस न करें।

[३० अप्रैल, १९३५ ई०]

महाभारत का भारत से सम्बन्ध

[सन् १९३५ में इंगलैण्ड, फ्रांस और इटली के एक हो जाने और जर्मनी के अकेले पड़ जाने पर लोगों को भ्रम हो गया था कि अब युद्ध न होगा और भारतीय कान में तेल डाले हाथ में हाथ धरे ही बैठे थे उन्हें अपने और विश्व के भविष्य की कोई चिन्ता ही नहीं थी।

भ्रम और प्रमाद को दूर करने के लिए जिम्मेदार सम्पादक ने वह चेतावनी दी जो सत्यं, शिवं, सुन्दरम् से सम्बद्ध है।

काश! अहिंसा के पङ्गु पुजारी भारतीय क्रांतदर्शी लेखक की चेतावनी समझ पाते!—सम्पादक]

पिछले अध्याय के लेख से पाठकों पर यह प्रभाव पड़ा होगा कि इंगलैण्ड, फ्रांस और इटली एक हो गये। हमने यह भी लिखा था कि इस समय इस त्रेत्र के कारण महाभारत न होगा। ठीक है, जर्मनी अकेला पड़ गया और वह सब राष्ट्रों से एक साथ ही लड़ नहीं सकता। यह सब हिटलर की भूल के कारण हुआ। फ्रांस और इटली ने नहीं, रूस ने इस समय राजनीतिक दाँवपेचों से जर्मनी को चारों खाने चित कर दिया। हिटलर ने सर जान साइमन को फ्रांस के विरुद्ध बहुत उभारा था किन्तु यह देखकर कि इंगलैण्ड लोकार्नो पैक्ट का समर्थन शक्ति भर करेगा, हिटलर की दाल फ्रांस के विरुद्ध नहीं गल सकी। सर जान साइमन ने हिटलर से यह चाहा कि पश्चमीय लोकार्नो पैक्ट के ही अनुसार वह एक पूर्वी लोकार्नो पैक्ट के अर्थात् वह फ्रांस, इंगलैण्ड, इटली रूस, पौलैण्ड के साथ-साथ इस समझौते पर हस्ताक्षर कर दे कि जर्मनी अपनी पूर्वी सीमाओं को बढ़ाने का प्रयत्न नहीं करेगा।

हिटलर इसके लिए राजी नहीं हुए। जर्मनी को पूर्व की ओर ही बढ़ने का रास्ता है। इंगलैण्ड भी आज तक अपने मौन से और दबी जबान कुछ कहकर भी जर्मनी की इस आकांक्षा को प्रोत्साहन देता रहा है। इसी भरोसे हिटलर ने खुले शब्दों में ज़ोर के साथ अपने भाव रूस के विरुद्ध प्रकट किये। हिटलर रूस से हाथापाई करना चाहता है और उसे भरोसा था कि कम से कम यूरुप पूँजीपति और साम्राज्यवादी राष्ट्र समाजवादी रूस के विरुद्ध उसका साथ देंगे। इंगलैण्ड की ओर से मिस्टर ईडेन रूस से बातचीत करने गये थे वहाँ स्टैलिन और लिटोनाक ने दूसरा ही पासा फेंका। रूस की ओर से इंगलैण्ड को यह विश्वास दिलाया गया कि रूस शांति का पक्षपाती है। वह कहीं भी किसी प्रकार का युद्ध नहीं चाहता रूसी जनता की भलाई और अपनी उन्नति के कारण उसे फुर्सत नहीं। वह यूरुप में भी और एशिया में भी सब राष्ट्रों से सब तरह का समझौता करने को तैयार है जिससे संसार की शान्ति भंग न हो। लिटोनाक ने मिस्टर इडेन से कहा कि पूर्वी लोकानो पैक्ट पर भी वह हस्ताक्षर करने को तैयार है अगर जर्मनी और पोलैण्ड भी इसमें शामिल हो जायँ। मिस्टर लिटोनाक का उद्देश्य साफ है। या तो सब राष्ट्रों में समझौता हो जाय और शान्ति कायम रहे और या पूँजीपति राष्ट्रों में मतभेद हो जाय, वे एक दूसरे से अलग हो जायँ और रुपये के पुजारी और साम्राज्यवादी राष्ट्रों का एक गुट्ट यूरुप में न बन सके। यदि जर्मनी, इटली, और फ्रान्स का गुट्ट बन जाता तो अन्ततोगत्वा एक दिन यह सब मिल कर समाजवादी रूस ही की हत्या करते। रूस की चाल का यह नतीजा हुआ कि इस समय रूस का सब से भयानक विरोधी हिटलर अकेला पड़ गया, साथ ही पूँजीपति राष्ट्रों में मतभेद और वैमनस्य हो गया और यह कभी एक न हो सकेंगे।

किन्तु उपर्युक्त सब बातों से पाठकों को यह समझ लेना चाहिए कि संसार की शान्ति भंग न होगी, महाभारत न होगा, और इटली, फ्रांस, या इंगलैण्ड सदा एक ही रहेंगे। इटली और फ्रांस में भीतर ही भीतर खींचतान है, फ्रांस ने ही, जैकोस्लोविया राष्ट्र का निर्माण किया है, बालकन राष्ट्रों का वही समर्थक है, इसी के इशारे पर यह सब नाचा करते हैं। इटली, जैकोस्लोविया का और जैकोस्लोविया इटली का घोर शत्रु है। इटली डैन्यूब के तट पर अपना साम्राज्य चाहता है, डालमेशिया में भी वह अपना प्रभुत्व चाहता है। हज़ारों वर्ष इन पर रोम का प्रभुत्व रहा है। मुसोलिनी रोम साम्राज्य का ही स्वप्न दिन में भी देखा करता है। इटली का ही सब से जबर्दस्त विरोधी जैकोस्लोविया है और इसे फ्रांस की ही मदद है।

इटली को फ्रांस हर तरह से खुश करना चाहता है। अफ्रीका में फ्रांस इटली की हर तरह से मदद करना चाहता है, अपने अपने प्रदेश को भी वह इटली को नज़र कर देना चाहता है किन्तु यह सब करने पर भी इटली और फ्रांस का मन मिल नहीं सकता। इटली एक जबर्दस्त नौसेना का बेड़ा रखना चाहता है और वह चाहता है कि नौसेना उसकी फ्रांस के ही बराबर और समान हो। जब से मुसोलिनी ने नौसेना की ओर ध्यान दिया है उसकी माँग यही रही है। समझौते की बहुत कोशिश हुई, फ्रांस ने यहाँ तक कहा कि भूमध्य सागर में अगर इटली को भय है तो भूमध्य सागर के बीच वह फ्रांस के बराबर ही अपनी नौसेना रख सकता है। फ्रांस का साम्राज्य बड़ा है उसके उपनिवेश और अधिकृत प्रदेश दूर-दूर हैं। इन प्रदेशों की रक्षा के लिए फ्रांस को बड़ी और अधिक नौसेना की आवश्यकता पड़ती है, इटली को इसकी जरूरत नहीं और इसलिए यदि इटली की नौसेना इतनी ही बड़ी होगी जितनी की फ्रांस की तो इटली

की नौसेना के जहाजों की अत्यधिक संख्या भूमध्य सागर में हर वक्त डटी रहेगी और फ्रांस की नौसेना का अस्तित्व इस तरह से खतरे में हो जायगा। अभी तो इटली की नौसेना को, अगर युद्ध हो तो फ्रांस भूमध्यसागर में आसानी से नष्ट-भ्रष्ट कर सकता है। इटली का यह साहस नहीं हो सकता कि अफ्रीका से आती हुई फ्रांस की सेना के जहाजों को इटली बाहर न निकलने दे किन्तु यदि फ्रांस के बराबर की नौसेना इटली की भी हो जायगी तो फ्रांस का जीवन संकट में हो सकता है। इटली और फ्रांस का यह मनोमालिन्य इसलिए भीतर ही भीतर रोज़ जोर पकड़ रहा है। यह न भी हो तो हम लोगों को

यूरुप के विस्फोटक

को कभी न भूलना चाहिए। यूरुपीय संसार का ज्वालामुखी बालकन राष्ट्र प्रदेश सदा रहा है। जैकोस्लोविया को तो एक धधकता हुआ बमगोला ही समझना चाहिए। विजेता राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने जैकोस्लोविया का इसलिए निर्माण किया था कि परस्पर विरोधिनी जातियों के लोग एक साथ रहकर निकट भविष्य में आपस में मिल जायँगे और एक साथ रहना सीख लेंगे, किन्तु यह कभी एक हो नहीं सकते। जैकोस्लोविया में सर्वो का ही आधिपत्य हैं। क्रोट जाति वाले एकदम पीस दिये गये हैं, और पीसे जा रहे हैं उनके नेताओं से वहाँ के जेल भरे हुए हैं। अत्यधिक विरोध फैला हुआ है और किसी समय भी यह बम का गोला फट सकता है और इसके फटते ही यूरुप के राष्ट्र एक नये ही गुट्ट में बँध, महाभारत का दृश्य सामने रख सकते हैं। सर्वो की सहायता जीवन रखते फ्रांस और रूस जरूर करेंगे, इटली दूसरी ओर होगा और यह असम्भव नहीं कि उसे जर्मनी को साथ लेना पड़े। कल के मित्र इंगलैण्ड, फ्रांस, इटली और रूस इस तरह एक दूसरे के विरुद्ध हो जायँगे।

हमने शुरू में ही कह दिया है कि ब्रह्मा के सिवाय कोई भी बड़ा से बड़ा राजनीतिज्ञ इस समय यह अनुमान नहीं लगा सकता कि महाभारत होने पर किन-किन राष्ट्रों का अलग-अलग गुट्ट बनेगा। यह सब बहुत कुछ इस पर निर्भर होगा कि युद्ध किसने छेड़ा और युद्ध कहाँ पर छिड़ा। इस समय इतना जरूर कहा जा सकता है कि फ्रांस, रूस, टर्की और जेकोसलेविया जरूर साथ रहेंगे।

यदि यह माना जाय कि बालकन प्रदेश की ज्वालामुखी से निकले हुए लावा से यूरुप में अग्नि-वर्षा न होगी और झगड़ा प्रशांत महासागर में कहीं पर शुरू होगा तो राष्ट्रों की गुट्टबन्दी कुछ दूसरे ही प्रकार की हो जायगी।

मध्य एशिया भी झगड़े का केन्द्र हो सकता है। हम यह पहले लिख चुके हैं कि इंगलैण्ड और जापान के समझौते के अनुसार मध्य एशिया में जापान ने इङ्गलैण्ड का अधिकार मान लिया है। मध्य एशिया में इंगलैण्ड का प्रभुत्व रूस नहीं सह सकेगा। एशिया में रूस अपने साम्राज्य का स्वप्न देख रहा है। जापान अपना साम्राज्य स्थापित करने के लिए लालायित है और इन दोनों विरोधियों के बीच एक तीसरी शक्ति भी धीरे-धीरे अपना पैर बढ़ा रही है और इस शक्ति का नाम है मुस्लिम शक्ति। ईरान के बादशाह का 'टर्की की सैर' तो नाम की बात थी। वास्तविक बात तो कमालपाशा से समझौते की थी। अब कमालपाशा ईरान जा रहे हैं। यह आना-जाना कोरा सैर-सपाटा नहीं है, विशेषकर जब कि समझौता हो गया है। हमको यह भी न भूलना चाहिये कि मध्य एशिया में सोवियेट मुस्लिम प्रजातन्त्र राज्य भी है। काशगर भी भावी महाभारत के लिए एक बम हो सकता है। हम यहाँ पर इतना और भी कह देना

चाहते हैं कि इटली के व्यापारी जहाज आज-कल चीनी समुद्र से
और हिन्द महासागर से भी व्यापार कर रहे हैं। एबीसीनिया में,
अफ्रीका में, चीन में, इटली और जापान की घोर प्रतिद्वन्द्विता है।
साम्राज्यवाद के रंगमंच पर इटली सब राष्ट्रों की दौड़ में सब से
बाद को आया। इटली के पास उपनिवेश वग़ैरह नाम को भी नहीं।
पिछले यूरुपीय महाभारत में इटली इस आशा से शरीक हुआ
था कि उसे भी कुछ प्रदेश मिल जायेंगे किन्तु मक्खन और
मलाई सब इङ्गलैण्ड और फ्रांस ने हड़प लिया, इटली मुँह
ताकता ही रह गया और इटली इस समय बड़े-बड़े स्वप्न देख
रहा है।

भारतीय भाइयों को ज़रा इस समय सावधानी से चारों
ओर आँख फैलाकर हर वक्त देखते रहना चाहिए। हम
गुलाम हैं। हमारा कोई राज्य नहीं, किसी के घटने-बढ़ने से हम
पर क्या संकट पड़ सकता है इसे भी हम नहीं अनुभव करते।
हमें न इसकी चिन्ता है, न इसकी फ़िक्र कि अगर कहीं महा-
भारत हो तो भारत का उससे क्या सम्बन्ध होगा, और भारत
पर उसका क्या असर होगा। हम योंही निकम्मे थे, ऊपर से
हम अहिंसावादी हैं, हम समझते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय जगत में भी
जिसमें कि राष्ट्र राजनैतिक दाँव-पेंच और अन्ततोगत्वा शक्ति
से फ़ैसला करते हैं वहाँ हम अहिंसावाद से विजय प्राप्त कर
लेंगे। अन्य सब राष्ट्र गोलाबारी करेंगे और हम निहत्थे खड़े-
खड़े अहिंसावाद का पाठ सुनायेंगे। हमारी ग़ुलामी की, हमारे
पतन की, सब से दुःखदाई बात यह है कि हम समझते हैं कि
भारत के सम्बन्ध में जो कुछ होगा वह अंगरेज और ब्रिटिश
परराष्ट्र-विभाग कर लेगा, हमें चिन्ता करने की आवश्यकता
नहीं। हमारी क़िस्मत का फ़ैसला होगा, हमारा रुपया आग की
तरह धधकेगा और नष्ट होगा, दुनिया के कष्ट हम भोगेंगे,

हमारे आदमी, हमारे भाई विदेशों में मरेंगे और मारेंगे और यह सब होते हुए भी हमें चिन्ता की आवश्यकता नहीं। हम यह साफ़ कह देना चाहते हैं कि मध्य एशिया के कारण अगर महाभारत हुआ तो इंगलैण्ड, इटली, फ्रांस यहाँ से बहुत दूर होंगे। युद्ध का क्षेत्र भारत की सीमा से चार-पाँच सौ मील से अधिक दूरी पर न होगा, वह इतनी ही दूर पर होगा जैसे प्रयाग से मद्रास। हम लोगों का इसलिए धर्म है कि हम भी अपना भला-बुरा सोचते रहें और ऐसा न हो कि समय उपस्थित हो जाय और हम सोते ही रहें। हम लोगों को यह भी न भूल जाना चाहिए कि अगर चीन और जापान एक हो गये तो जापान तिब्बत की ओर से, रूस गिलगिट तथा काश्मीर की ओर से और अफगानिस्तान की ओर से सब ही भारत पर चढ़ सकते हैं। हम लोग क्या करेंगे यह सोचने की बात है। मि० बाल्डविन के शब्द हमारे कानों में हर समय गूँजना चाहिए। "A land which is not willing to take the necessary precautionary measures for its defence, will never have power in this world neither moral nor material power".

[७ मई, १९३५ ई०]

जर्मनी फिर जर्मनी क्यों बना ?

[सन् १९१४ के महाभारत में विजित राष्ट्रों ने वार्साई सन्धि के द्वारा जर्मनी का जो घोर अपमान किया और उसे सदैव के लिए दलित बनाये रखने का भीषण कुचक्र रचा उस रहस्य और कारनामे को मद्दे नजर रखते हुए विद्वान लेखक ने उभड़े हुए जर्मनी और उसके नूतन भाग्य-विधाता हिटलर का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए घटनाओं का औचित्य स्वीकार किया है । —सम्पादक]

पिछले पृष्ठों में हमने बहुत-सी बातें कह दी हैं। पाठकों को वह कल्पना-प्रेरित ही दिखाई देंगी, किन्तु बात ऐसी नहीं है । रूस के स्टालिन और लिटीनाफ की राजनीतिक विजय का हिस्सा उतने ही से समाप्त नहीं होता । पाठकों को यह भी ध्यान में रख लेना चाहिए कि रूस के साथ इङ्गलैण्ड मिल जाय, इङ्गलैण्ड जापान का सहायक और मित्र न रहे, इसके लिए रूस ने इंगलैंड को बड़े-बड़े प्रलोभन दिये थे । ब्रिटिश साम्राज्य में समाजवाद न फैलाने की बात तो साधारण सी ही है, रूस ने यह भी वादा किया था कि मध्य एशिया में भी इङ्गलैण्ड जो चाहे करे, रूस हस्तक्षेप नहीं करेगा । पाठक अगर भूले नहीं हैं तो उनको याद होगा कि यही समझौता जापान ने भी इंगलैण्ड से किया है । जापान, एशिया पर अपनी प्रधानता चाहता है, रूस अपनी चाहता है और मुस्लिम राष्ट्र अपनी कोशिश करेंगे यह भी शेख-चिल्ली की ही बातें नहीं हैं। फ्रांसवाले रूस के पक्षपाती नहीं थे, वे नहीं चाहते थे कि फ्रांसीसी सिपाही व्लाडीवास्टक की

रक्षा में अपने प्राण गँवायें, किन्तु अब फ्रांसवाले यह समझने लगे हैं कि रक्षा वास्तव में ब्लाडीवास्टक की नहीं वरन् फ्रांस और उससे भी अधिक यूरुप की है। इस समय यूरुपीय साम्राज्यों में यह विचार जोर पकड़ रहा है कि एक न एक दिन शीघ्र ही यूरुप और एशिया में महायुद्ध होगा। १६१४ के पहले कैसर ने 'यलो पेरिल' का चीत्कार मचाया था। अब इसकी दुहाई वर्षों से मुसोलिनी कर रहे हैं, उनका डांडा-मेड़ी जापान से है और वे जापान के विरुद्ध यूरुपीय राष्ट्रों का एक संघ चाहते हैं। एशिया उठ गया और यूरुप को दबा लेगा, इसकी चर्चा फ्रांस में भी बहुत है। फ्रांस में दो महत्त्वपूर्ण पुस्तकें इधर प्रकाशित हुई हैं। एक का नाम है 'क्रिसी डीला यूरोपा' दूसरी का नाम 'ला डेसटिन डेस रेसम ब्लेनचस' है। प्रथम के ग्रन्थकर्ता फ्रांस के प्रसिद्ध अर्थशास्त्रवेत्ता एन्ड्री सीगफ्राईड हैं, दूसरी के डेनरी डिक्यूगी। दोनों ही पुस्तकों में दो तरीकों से एक ही सत्य प्रतिपादित किया गया है। ग्रन्थकारों का कहना है कि एशिया ही सभ्यता का जन्मदाता है, एशिया ने ही लिखना-पढ़ना, गणित, प्रेस, कातने-बुनने की क्रिया, लोहा, शीशा, कागज और सब ही कुछ संसार को दिया, हम लोगों ने केवल इनको और अच्छा रूप दे दिया है। अब वह समय आ गया है कि एशिया फिर स्थिति का मालिक बने और हम लोगों के हाथ से रोशनी को ले कर फिर संसार का पथ-प्रदर्शक बन जाय। कोरी कल्पना से नहीं, संसार को तथ्य बातों, और व्यापारिक, औद्योगिक, आर्थिक, कृषि सम्बन्धी आंकड़ों से उपर्युक्त कथन सिद्ध किया गया है और यह कहा गया है कि यूरुप की रक्षा के लिए यह नितांत रूप से आवश्यक है कि यूरोप के राष्ट्र और गोरी जातियाँ फौरन एक होकर रक्षा का प्रबन्ध करें। चीन और जापान एक होकर अगर दस वर्ष भी आगे बढ़ सके तो

ये एक बार संसार को हिला देंगे, इसमें सन्देह हमें भी नहीं। हमने पिछले अध्याय में काश्मीर की सीमा और गिलगिट का कुछ जिक्र किया था। काश्मीर के संबन्ध में हम बहुत कुछ कह नहीं सकते, इधर काश्मीर के सम्बन्ध में जो बहुत कुछ हो रहा है उसकी तह में यही भय है कि काश्मीर की सीमा से भारत पर आक्रमण हो सकता है। ब्रिटिश सरकार भी चिन्तित है और काश्मीर दरबार और ब्रिटिश सरकार में कुछ लिखा-पढ़ी भी जारी है, इसमें सन्देह नहीं। खबर है कि गिलगिट में जून, १६३५ में ब्रिटिश सेना का प्रबन्ध होगा, काश्मीर के सैनिक वहाँ से हटा लिये जायँगे, और क्या-क्या होगा यह कौन जाने। जून मास आने पर समाचार जब पत्रों में प्रकाशित किये जायेंगे, तब ही कुछ अन्दाज़ा लगाया जा सकेगा।

इन सब बातों को अब हम यहीं पर छोड़ देते हैं। आज हम पाठकों को केवल यह बतलाना चाहते हैं कि जर्मनी फिर जर्मनी क्यों बना और आज उसको दुहाई देकर इङ्गलैण्ड, फ्रांस, इटली, रूस और सब ही राष्ट्र एक क्यों हो गये। जर्मनी को पिछले महाभारत के समय में भी इङ्गलैण्ड, फ्रांस और रूस ने घेर रखा था। ये सब राष्ट्र उस समय भी जर्मनी को चटनी बना देना चाहते थे। हमने उस समय लिखा था कि यदि स्वर्गवासी एडवर्ड ग्रे अपने दाँत दिखा देते, इङ्गलैण्ड कह देता कि वह फ्रांस और रूस का साथ जर्मनी के विरुद्ध देगा तो महाभारत रुक जाता, जर्मनी कभी न लड़ता। अब इस सत्य को कितने ही विद्वान् स्वीकार करते हैं। यह सब होते हुए भी जर्मनी के माथे ही कलङ्क का टीका लगाया गया। वार्साई की सन्धि में महाभारत छेड़ने का कलङ्क जर्मनी को लगाया था और युद्ध का दोषी वही ठहराया गया। कहा गया था कि युद्ध का नाम संसार से मिटा देने के लिए ही महाभारत लड़ा जा रहा है। कहा जाता

था कि युद्ध इसलिए लड़ा जा रहा है कि बलवान् निर्बल को दबा न सकें, जातियों को स्वभाग्यनिर्णय का अवसर मिले, किन्तु जर्मनी के अस्त्र रखते ही उसे अपमानित करने, मिटाने, पद-दलित करने को लालसा में विजेता लीन हो गये और आज उसी का फल संसार भोग रहा है और भोगेगा। अगर न्याय न भी सही मनुष्योचित व्यवहार भी जर्मनी के साथ हुआ होता तो आज जो हो रहा है और जर्मनी कर रहा है, वह सब कुछ न होता। जर्मनी, जर्मनी न होता, वह मनुष्यों की श्रेणी से गिर जाता अगर उसने वही न किया होता जो आज उसने किया। कोई भी मनुष्यों की स्वाभिमानी जाति जर्मनी के साथ जो हुआ था उसे भूल नहीं सकती थी। जर्मनी के कष्टों की, उसके अपमान की सीमा न थी। सन्धिपत्र जर्मन प्रतिनिधियों के सामने हस्ताक्षर के लिए यह कहकर रखा गया था कि यदि हस्ताक्षर नहीं करोगे तो विजेताओं की सेना फिर युद्ध आरंभ कर देंगी। इसका फल यह होता कि अस्त्र रखे हुए जर्मनी पर सेनाएँ चढ़ जातीं, जर्मनी पर कब्ज़ा इंगलैण्ड, फ्रांस, बेलजियम की सेनाओं का हो जाता। किन्तु फिर भी शर्तें इतनी अपमानजनक, अन्याय युक्त और बेजा थीं कि दो सौ जर्मन प्रतिनिधि बिना हस्ताक्षर किये १६ जून, १९१९ को वेमयर (Weimar) लौट गये। इन लोगों ने अपने देश को लौटकर यही सलाह दी कि हस्ताक्षर न किया जाय। सन्धि की शर्तों को स्वीकार करने से मर जाना और मिट जाना अच्छा है। राष्ट्रीय परिषद् में अनेक दिनों की हाय-हाय के बाद यह तय हुआ कि हस्ताक्षर कर दिये जायँ, क्योंकि विदेशी सेना के देश में फैल जाने से कोई अपमान ऐसा न रहता जिसे सहन न करना पड़ता। जिन लोगों ने इस भय से हस्ताक्षर कर दिया उनको आज तक जर्मन माफ़ नहीं कर सके हैं। सन्धि की शर्तें क्या थीं; जर्मन राष्ट्र के टुकड़े कर दिये

गये, हर तरफ उसमें काट-छाँट की गई, जर्मनी के उपनिवेश उससे छीन लिये गये. क्षतिपूर्ति की रकम ऐसी निश्चित की गई कि आगे आनेवाली तीन पुश्त सर न उठा सकें, भावी सन्तानों के लिए यह विधान हो गया कि विजेताओं के सुख के लिए, वे गुलामों की भाँति परिश्रम करें, जर्मनी के अस्त्र-शस्त्र छीन लिये गये। यही नहीं, जो आर्थिक घेरा जर्मनी के चारों ओर राष्ट्रों ने डाल रखा था वह नहीं हटाया गया। जर्मनी में किसी क़िस्म का सामान नहीं पहुँच रहा था और जर्मन खाद्य वस्तुओं के अभाव से भूखों मर रहे थे। १९१९ के आरंभ में ही अधिकृत राइन-लैण्ड के ब्रिटिश सेना के कमान्डर-इन चीफ़ जेनरल क़्लूमर ने लिखा था कि यदि भूखों मरते हुए जर्मनों के लिए खाद्य वस्तुएँ नहीं आने दी जातीं तो अपनी सेना में व्यवस्था कायम रखना मेरे लिए कठिन हो जायगा। युद्ध के खत्म हो जाने के बाद आर्थिक घेरे के कारण भूख से तड़प-तड़प कर मरने वाले कष्टों को जर्मन भूले नहीं हैं और मेरा भी कहना यही है कि उनको भूलने के पहले यह अच्छा होगा कि एक भी जर्मन संसार में रहे ही नहीं। आज जो जर्मनी में जवान हैं उनकी हड्डियों में भी भूख की तड़पन और खाद्य वस्तुओं के अभाव का असर बाक़ी है। वह जाति मनुष्यों की नहीं, जानवरों की भी शायद नहीं हो सकती जो अपने ऊपर किये गये ऐसे कृत्यों और अपमानों को भूल जाय। १९१९ का तो कहना ही क्या, १९२४ में भी राइनलैंड में यह दशा थी कि गोरे सड़क पर जाते हुए भले आदमी जर्मनों की हैट उछाल कर ज़मीन पर फेंक देते थे, इसलिए कि उन्होंने सलाम नहीं किया। गोरे स्त्रियों पर आक्रमण करते थे और जो कोई पिता, पति या भाई अपनी पुत्री, पत्नी या बहिन की सहायता के लिए खड़ा होता था वह तुरन्त ही गोली का शिकार होता था। क्या कोई भी मनुष्यों की जाति ऐसे-ऐसे अपमानों को भूल सकती

है, क्या कोई भी आत्मसम्मानी जाति दुनिया में बिना इसका बदला लिये, बिना इसका प्रयत्न किये कि फिर ऐसी घटनाएँ घट न सकें, चैन से बैठ सकती है ? इन्हीं बातों ने हिटलर को जन्म दिया, और आज अभिमानी मर्दों की जाति कमर कस कर खड़ी हो गई है। हम जर्मनी में १६१६ से लेकर ३५ तक में क्या-क्या हुआ वह सब नहीं कहना चाहते। इस लेख का उद्देश्य ही नहीं। जर्मनी किस-किस स्थिति में होकर गुज़रा यह सब एक छोटे से लेख में कहा भी नहीं जा सकता। इतना ही कह देना काफ़ी होगा कि जिस समय हिटलर आगे आया उसके साथ केवल ६ आदमी थे, और दल के कोष में केवल चार रुपया चौदह आना। तीन वर्ष के भीतर ही उसके साथ लाखों थे। हिटलर की सङ्गठन शक्ति का इतना प्रभाव बूढ़े जेनरल लूडन डार्फ पर पड़ा कि जर्मन प्रजातन्त्र राष्ट्र के विरुद्ध बग़ावत करने में वे उसके साथ हो गये। बाग़ियों के आगे-आगे जेनरल लूडन डार्फ और हिटलर चले और दल सरकार पर कब्जा करने को आगे बढ़ा। हिटलर के दल पर पुलीस ने गोली चलाना शुरू किया और मिन्टों में ही दल के साथी सब या तो इधर-उधर भाग गये और या ज़मीन पर लेट गये। प्रथम गोली की बाढ़ से ही विप्लव शांत हो यगा, किन्तु इस बाढ़ से तनिक भी विचलित न हो जेनरल लूडन डार्फ उसी तरह आगे बढ़ते गये। जनरल लूडन डार्फ और हिटलर गिरफ़्तार हो गये। चौदह मास के बाद जेल से छूटते ही हिटलर ने फिर प्रयत्न करना आरम्भ किया। सन् १६२३ के विप्लव की असफलता से उसने यह तय किया कि विप्लव से काम सहसा नहीं चलेगा, पहले नियमानुमोदित उपायों से ही काम चलाना होगा। इसी तरह से उसने काम शुरू किया, खुली मारकाट, और शक्ति के प्रयोग से हटकर जो दूर रहते थे वे भी अब साथ आने लगे, जर्मनी की ग़रीबी, बेकारी और

हीन दशा ने उसकी सहायता की और लाखों की संख्या में लोग उसके दल में शरीक होने लगे। सन् १६२८ के पार्लामेन्टरी चुनाव में हिटलर-दल के पक्ष में ८,०९५४१ वोट आये, १६३० में हिटलर के पक्ष में (६४०६३६७) चौसठ लाख आये। १६३२ में हिटलर प्रेसीडेन्टी के लिए हिन्डरबर्ग के विरुद्ध प्रेसीडेन्टी के लिए खड़ा हुआ और उसके लिए १३४१७४६० वोट आये, दो मास ही बाद जब फिर वोट पड़ा तब हिटलर के पक्ष में १३४१७४६० वोट आये। देश के ३७ फ़ी सैकड़ा मतदाता उसके पक्ष में थे। चार मास बाद गर्मियों में जब फिर वोट पड़ा तो हिटलर को एक करोड़ सैंतीस लाख (१३७३३०००) वोट मिले। यह प्रत्यक्ष हो गया कि जब तक हिटलर साथ न हो कोई भी सरकार जर्मनी में चल नहीं सकती। वान पेपन ने, ब्रूनिङ्ग ने अपनी अपनी सरकार के लिए हिटलर को मिलाना चाहा किन्तु सफल न हुए। जेनरल (Schleicher) स्कैलीकर के पतन के बाद फिर वान पेपन ने हिटलर को मिलाने की सफलता की, इस बार इनको कुछ सफलता मिली। हिटलर किंचित लाभों के लिए पागल न था, वह तो जर्मनी के विधाता होने का स्वप्न देख रहा था और एक बार द्वार के भीतर क़दम रखते ही, वह चढ़ दौड़ा और उसने सब पर कब्जा कर लिया।

[१४ मई, १६३५ ई०]

इङ्गलैण्ड, अमरीका जापान से लड़ेंगे

["इङ्गलैण्ड अमरीका और जापान को आपस में लड़ाकर एक का सहायक बन जायगा। इङ्गलैण्ड ने जिन चालों से नेपोलियन, कैसर को पद-भ्रष्ट किया है उन्हीं चालों को वह अमरीका और जापान के साथ चलेगा।

इन युद्धों से एशिया अवश्य स्वतंत्र होगा। एशिया की स्वतंत्रता से ही विश्व में शांति स्थापित हो सकती है। इसलिए एशियावासियों का कर्त्तव्य है कि विश्व-शांति स्थापित करने के लिए वे स्वयं इस उद्योग में अपने कंधे लगादें। एशिया का ज़र्रा-ज़र्रा स्वतंत्रता के गीत गाये।"

लेखक की यह भविष्यत् की कल्पना पत्थर की लीक की भाँति अमिट और सत्य है।—सम्पादक]

इन राष्ट्रों में शीघ्र ही एक दिन युद्ध होगा यह निश्चित है। इङ्गलैण्ड का दोष नहीं, इङ्गलैण्ड के स्थान पर हम होते तो हम भी कदाचित् यही करते। इङ्गलैण्ड राष्ट्रों की दौड़ में प्रबल प्रतिस्पर्धी नहीं देख सकता। इस समय अगर संसार में इङ्गलैण्ड से कोई लोहा लेने का साहस कर सकता है तो वह अमरीका या जापान हो सकता है। इङ्गलैण्ड कभी इन राष्ट्रों को प्रबल न होने देगा। वह अमरीका और जापान को लड़ाकर किसी एक का सहायक बन दूसरे को नष्ट-भ्रष्ट कर देगा या वह स्वयं किसी से युद्ध मोल लेकर दोनों राष्ट्रों में से एक को अपने पक्ष में कर दूसरे को

नष्ट कर देगा ऐसी सम्भावना है। अमरीका और इङ्गलैण्ड में मनमुटाव काफी बढ़ रहा है साथ ही अमरीका और जापान में भी वैमनस्य कुछ कम नहीं। इङ्गलैण्ड ने जिन चालों से नेपोलियन और कैसर को पद भ्रष्ट किया है उन्हीं चालों को वह अमरीका और जापान के साथ चलेगा इङ्गलैण्ड का इतिहास इस बात को पुकार-पुकारकर कह रहा है।

इङ्गलैण्ड और अमरीका में पंचायत (Arbitration yreaty) कर मामला तय करने की सन्धि जो स्थापित हुई है उससे यह प्रकट है कि दाल में कुछ काला है। साथ ही इंगलैण्ड और जापान की सन्धि को प्रायः स्थापित करने के समय इंगलैण्ड, अमरीका और जापान में जो विचारधारा प्रवाहित हुई थी वह भी अर्थ से खाली न थी। इंगलैण्ड और अमरीका में मनमुटाव है, जापान और अमरीका में वैमनस्य है। जापान से यह भी छिपा नहीं कि पश्चिमीय राष्ट्र अपने को ईश्वर का सगा समझते हैं और पूर्वीय देशों और निवासियों को हीन दृष्टि से देखना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते हैं।

महाभारत करा देने के लिए यह सब काफ़ी है। जर्मन सौर-मंडल में अपने खोये हुए स्थान को प्राप्त करने का प्रयत्न करे तो भी और न करे तो भी संसार को महाभारत देखना अभी बदा है। इन बातों के साथ ही साथ हम लोगों को यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि जापान की इस समय दशा वही है जो सात वर्ष पहले जर्मनी की थी, उसके लिए आगे बढ़ना, लड़ना या मरना अनिवार्य रूप से आवश्यक है। उसके लिए अपनी चन्द्रमा की कला की भाँति नित्यप्रति बढ़ती हुई जनता के निवासस्थान और भोजन का प्रबन्ध करना जरूरी है।

एशिया की स्वतंत्रता

इस समय संसार के सामने सब से अधिक महत्त्व का प्रश्न है

कि संसार में स्थायी शान्ति कैसे स्थापित हो। हम देखते हैं कि इस वर्तमान काल में युद्ध नित्यप्रति बढ़ती हुई जनता के लिए नूतन बाज़ारों और स्थानों पर कब्ज़ा करने के लिए ठाने जाते हैं। यूरुपीय महाभारत के कारणों पर विचार करने से हमको यह साफ़ दिखाई देता है कि एशिया खंड के बाज़ारों, स्थानों तथा और समुद्रों पर कब्ज़ा करने के लिए ही वास्तव में युद्ध लड़ा गया। यदि एशिया महाद्वीप के स्थान स्वतंत्र होते, यदि उन पर कब्ज़ा करना सहज न होता या यदि उन पर कब्ज़ा करना पाप समझा जाता तो संसार को यूरुपीय महाभारत का दृश्य न देखना पड़ता। इसलिए हमारी समझ में संसार में स्थायी शान्ति स्थापित करने का सब से सहज उपाय एशिया महाद्वीप की स्वतंत्रता की रजिस्ट्री कर देना है। इस कारण से संसार को यूरुप और अमरीका से यह स्वीकार कराना होगा कि एशिया महाद्वीप स्वतंत्र है और उसके खंडों पर किसी दूसरे का क़ब्ज़ा नहीं स्थापित हो सकता। जिस प्रकार से अमरीकावाले 'मुनरोसिद्धांत' का राग अलापते हैं, जिस तरह से आस्ट्रिया और केनाडावाले यह पुकारते हैं कि 'आस्ट्रेलिया आस्ट्रेलियनों के लिए है' 'केनाडा केनेडियनों के लिए है' उसी प्रकार से संसार में स्वयंसिद्ध होना चाहिए कि 'एशिया एशियावासियों के लिए है।' हम यह साफ़ और ज़ोरों से कह देना चाहते हैं कि मानव समाज को एशिया की स्वतंत्रता की बुरी तरह से आवश्यकता है। युद्ध संसार में तब तक होते रहेंगे जब तक युद्ध करने और विजय प्राप्त करने से लाभ हो सकता है। युद्ध का नाम संसार से मिटा देने के लिए ज़रूरी यह है कि हम लोग युद्ध को 'लाभहीन' निस्सार और निरर्थक बना दें। जब तक हम लोग यह नहीं कर सकते युद्ध संसार में होते रहेंगे।

अगर युद्ध करने से पददलित प्रदेशों—अफ्रीका, एशिया

आदि के स्थानों और निवासियों पर प्रभुत्व न प्राप्त हो तो युद्ध का नाम कोई न लेगा। अगर एशिया और अफ्रीका आज प्रबल हो जायँ और इनसे युद्ध करना केवल शिकार खेलने के तुल्य न दिखाई दे तो युद्ध होना असम्भव हो जायगा। इसलिए इन प्रदेशों का शस्त्रसज्जित, सबल और स्वतंत्र होना स्थायी शान्ति के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक है।

असंभव नहीं कि इन प्रदेशों के प्रबल होने पर जो आज यूरुप और अमरीकावाले कर रहे हैं वही एशिया और अफ्रीका-वाले करने लगें। सम्भव है संसार का चक्कर घूम जाय, जिस स्थान पर आज यूरुप और अमरीका हैं वहाँ एशिया अफ्रीका हों और एशिया और अफ्रीका के स्थान पर यूरुप और अमरीका दिखाई देने लगें। ऐसी अवस्था में युद्ध जारी रहेंगे। इसलिए स्थायी शान्ति के लिए अच्छा यह होगा कि संसार के समस्त राष्ट्रों और जातियों का अर्थात् मानव-समाज का एक सङ्घ हो और उसका मुख्य नियम यह हो कि ईश्वर ने समस्त जातियों और मनुष्यों को स्वतन्त्रता और स्वराज्य का एक समान स्वत्व दिया है, कोई किसी दूसरी जाति पर राज्य न करे, और अगर कोई ऐसा करने का साहस करेगा तो अन्य सब मिलकर उसका दिमाग़ दुरुस्त कर देंगे।

राष्ट्रसङ्घ का उद्देश्य यही होना चाहिए था किन्तु वह विजय राष्ट्रों का खिलौना, विजय को स्थायी करने की चिन्ता में उद्देश्य-भ्रष्ट हो गया।

संसार की भलाई के मामले, 'राष्ट्रसङ्घ' का खिलौना नहीं तय कर सकता। हमने अब तक राष्ट्रसङ्घ की चर्चा नहीं की और इस समय भी हम इतना ही कहकर उसकी चर्चा समाप्त कर देना चाहते हैं कि उसके सम्बन्ध में एक उर्दू कवि का यह शेर—

'बहुत शोर सुनते थे पहलू में दिल का,
जो चीरा तो एक कतरये ख़ून निकला।'

पूर्णरूप से चरितार्थ होता है। सच तो यह है कि सङ्घ राष्ट्रों का नहीं वरन् लुटेरों का सङ्घ था। उसका जन्म हुआ था संसार को नूतन साँचे में ढालने के लिए, उसका उद्देश्य था "संसार का पुनः संगठन" किन्तु सच पूछा जाय तो लूट-खसोट और धूर्तता के सिवा उसने कुछ किया ही नहीं। संधि-परिषद् में एशिया को कोई वास्तविक स्थान नहीं मिला। एशिया के पुनर्संगठन का प्रश्न, जो संसार के लिए वैसे ही अनिवार्य रूप से आवश्यक है जैसे जल और वायु, संधि-परिषद् में उठाया ही नहीं गया। संसार में स्थायी शांति स्थापित करने का ढोंग रचनेवालों को यह न दिखाई दिया कि एशिया के अस्वतन्त्र, परपददलित और परमुखापेक्षी रहते हुए संसार में शान्ति कैसे स्थापित हो सकती है? सम्भव है ईश्वरीय प्रेरणा से ही बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों को इतनी छोटी-सी बात न दिखाई दी हो, क्योंकि हमारा यह विश्वास है कि एशिया में पूर्ण रूप से स्वतन्त्रता स्थापित होने के लिए यह बहुत जरूरी है कि संसार में यूरुपीय महाभारत के सामने अनेक महाभारत हों। इन महाभारतों की अग्नि-ज्वाला में तपाया जाकर ही एशिया चमकने लगेगा।

महाभारतों की कृपा से एशिया स्वतन्त्र होगा। साथ ही उसमें वह शक्ति भी पैदा हो जायगी जिससे अपनी स्वतन्त्रता और मर्यादा की वह रक्षा कर सके। चाहे जिस दृष्टि से देखा जाय, स्थायी शान्ति संसार में स्थापित हो। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह सर्वप्रथम आवश्यक है कि विदेशियों से एशियाखंड मुक्त हो जाय। सबसे महत्त्वशाली और गम्भीर प्रश्न, संसार के सामने सच देखा जाय तो यही है कि एशिया के यूरुप और अमरीका-वालों की सेना नौसेना और हवाई जहाज आदि न रहें।

पश्चिमीय प्रदेश-वासियों का पूर्वीय देशों से प्रभु की हैसियत से निकल बाहर होना या निकाल बाहर किया जाना, संसार के स्थाई शान्ति के भवन की नींव का पहिला पत्थर है। एशिया के खंडों के प्रभु वहाँ के निवासी हों यह ज़रूरी है, इससे वर्तमान समय में कोई हानि न होगी कि शासनक्रम, उनका राजतन्त्र, प्रजातन्त्र एकाधिपत्य या निरंकुश है।

संसार में जो शान्ति स्थापित करना चाहते हैं उनका यह धर्म है, प्रथम कर्तव्य है कि वे इस उद्योग में लीन हों कि एशिया का ज़र्रा ज़र्रा अपनी आज़ादी के गीत गाये। यूरुप, अमरीका तथा पश्चिमीय संसारवाले यदि यह नहीं करते तो एशियावासियों का यह कर्तव्य हो कि संसार में वास्तविक शान्ति स्थापित करने के हेतु वे स्वयं इस उद्योग में अपने कंधे लगा दें। यूरुप और अमरीका नासमझ बने रहें किन्तु यह एक विकट सत्य है कि एशियावासियों की अन्याय-सहन की शक्ति जवाब दे चुकी है और वे अब अन्याय और अत्याचारों को एक मिनट भी सहने के लिए तैयार नहीं। इसके साथ ही इस लज्जा के कारण उनको भी ग़ुलाम बना कर रखने के लिए मानव-समाज में जब देखिये खून की नदियाँ बह जाया करती हैं। एशिया-निवासी अब इस अन्याय, अपमान और लज्जा को सहन करने के लिए तैयार नहीं।

यूरुपवासियों को मालूम न होगा किन्तु एशिया-निवासी बहुत दिनों से यह गाना गा रहे हैं—

"जो हँस रहा है वो हँस चुकेगा।
जो रो रहा है वो रो चुकेगा॥
सूकून दिल से खोदा खोदा कर।
जो हो रहा है वो हो चुकेगा॥

'बहुत शोर सुनते थे पहलू में दिल का,
जो चीरा तो एक कतरये .खून निकला।'

पूर्णरूप से चरितार्थ होता है। सच तो यह है कि सङ्घ राष्ट्रों का नहीं वरन् लुटेरों का सङ्घ था। उसका जन्म हुआ था संसार को नूतन साँचे में ढालने के लिए, उसका उद्देश्य था "संसार का पुनः संगठन" किन्तु सच पूछा जाय तो लूट-खसोट और धूर्तता के सिवा उसने कुछ किया ही नहीं। संधि-परिषद् में एशिया को कोई वास्तविक स्थान नहीं मिला। एशिया के पुनर्संगठन का प्रश्न, जो संसार के लिए वैसे ही अनिवार्य रूप से आवश्यक है जैसे जल और वायु, संधि-परिषद् में उठाया ही नहीं गया। संसार में स्थायी शांति स्थापित करने का ढोंग रचनेवालों को यह न दिखाई दिया कि एशिया के अस्वतन्त्र, परपददलित और परमुखापेक्षी रहते हुए संसार में शान्ति कैसे स्थापित हो सकती है? सम्भव है ईश्वरीय प्रेरणा से ही बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों को इतनी छोटी-सी बात न दिखाई दी हो, क्योंकि हमारा यह विश्वास है कि एशिया में पूर्ण रूप से स्वतन्त्रता स्थापित होने के लिए यह बहुत ज़रूरी है कि संसार में यूरुपीय महाभारत के सामने अनेक महाभारत हों। इन महाभारतों की अग्नि-ज्वाला में तपाया जाकर ही एशिया चमकने लगेगा।

महाभारतों की कृपा से एशिया स्वतन्त्र होगा। साथ ही उसमें वह शक्ति भी पैदा हो जायगी जिससे अपनी स्वतन्त्रता और मर्यादा की वह रक्षा कर सके। चाहे जिस दृष्टि से देखा जाय, स्थायी शान्ति संसार में स्थापित हो। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह सर्वप्रथम आवश्यक है कि विदेशियों से एशियाखंड मुक्त हो जाय। सबसे महत्त्वशाली और गम्भीर प्रश्न, संसार के सामने सच देखा जाय तो यही है कि एशिया के यूरुप और अमरीका-वालों की सेना नौसेना और हवाई जहाज़ आदि न रहें।

पश्चिमीय प्रदेश-वासियों का पूर्वीय देशों से प्रभु की हैसियत से निकल बाहर होना या निकाल बाहर किया जाना, संसार के स्थाई शान्ति के भवन की नींव का पहिला पत्थर है। एशिया के खंडों के प्रभु वहाँ के निवासी हों यह जरूरी है, इससे वर्तमान समय में कोई हानि न होगी कि शासनक्रम, उनका राजतन्त्र, प्रजातन्त्र एकाधिपत्य या निरंकुश है।

संसार में जो शान्ति स्थापित करना चाहते हैं उनका यह धर्म है, प्रथम कर्तव्य है कि वे इस उद्योग में लीन हों कि एशिया का ज़र्रा ज़र्रा अपनी आज़ादी के गीत गाये। यूरुप, अमरीका तथा पश्चिमीय संसारवाले यदि यह नहीं करते तो एशियावासियों का यह कर्तव्य हो कि संसार में वास्तविक शान्ति स्थापित करने के हेतु वे स्वयं इस उद्योग में अपने कंधे लगा दें। यूरुप और अमरीका नासमझ बने रहें किन्तु यह एक विकट सत्य है कि एशियावासियों की अन्याय-सहन की शक्ति जवाब दे चुकी है और वे अब अन्याय और अत्याचारों को एक मिनट भी सहने के लिए तैयार नहीं। इसके साथ ही इस लज्जा के कारण उनको भी ग़ुलाम बना कर रखने के लिए मानव-समाज में जब देखिये खून की नदियाँ बह जाया करती हैं। एशिया-निवासी अब इस अन्याय, अपमान और लज्जा को सहन करने के लिए तैयार नहीं।

यूरुपवासियों को मालूम न होगा किन्तु एशिया-निवासी बहुत दिनों से यह गाना गा रहे हैं—

"जो हँस रहा है वो हँस चुकेगा।
जो रो रहा है वो रो चुकेगा॥
सूकून दिल से खोदा खोदा कर।
जो हो रहा है वो हो चुकेगा॥

हमारी मंजिल का है वो दुश्मन।
हमारी राहें बिगाड़ता है॥
खिलेंगे कुछ कुदरती शिगूफे।
जब अपने काँटे वो बो चुकेगा॥
फलक़ चले जालिमाना चालें।
मचाये अन्धेर जितना चाहे॥
जमाना लेगाही कोई करवट।
नसीब बेकस का सो चुकेगा॥

(अकबर)

एक तरफ़ यह है, दूसरी ओर पश्चिमीय मित्रों की दयामय देख-रेख से भी उनका दिल थक गया है। हम लोगों ने सबको अच्छी तरह से देख लिया है। औरों का कहना ही क्या, फ्रान्स ने, जो समता, भ्रातृत्व और स्वतन्त्रता की भूमि समझा जाता है, "इन्डो चाइना" को जिस बेईमानी, निर्दयता और कठोरता से लूटा है उनका दुःखद चित्र उनकी आँखों के सामने हरदम नाचा करता है। फ्रान्स ने क्रूर शासन में जावा और "ईस्ट इंडीज" के लुटेरों, डच लोगों को, भी मात कर दिया। चीन के साथ पश्चिमीय संसारवालों ने १८४२ से आज तक जो व्यवहार किया है, उससे नव-चीन सब पश्चिमीय संसारवालों को अपना घोर शत्रु समझ रहा है। फ़ारस के साथ रूस और इङ्गलैण्ड ने ही क्या नहीं किया? तुर्कों के साथ यूनानियों, इटैलियनों और अन्य सबों ने क्या उठा रखा? बेलजियम ऐसे छोटे राष्ट्र ने भी फ़ारस में चुंगी के नाम पर ही फ़रासीसियों के नाकोदम कर दिया। टर्की ने एक के बाद दूसरे समस्त पश्चिमीय राष्ट्रों से मित्रता और सन्धि स्थापित की, सबों को उसने मित्रता की कसौटी पर कसा। उसका अनुभव बहुत ही दुखदाई है। ईसाई संसार से ही उसका दिल खट्टा हो गया है।

अमरीका जापानियों के साथ क्या कर रहा है ? अपने घर में वह एशियानिवासियों को नहीं चाहता, बात-बात में वह "मुनरो सिद्धान्त' की दोहाई देता है किन्तु एशिया में हवाई और फिलीपाइन द्वीपों के सहारे वह अपना पैर जमाता जा रहा है। यह असंभव नहीं कि जापान जिस लिए रूस से लड़ा था इसीलिए उसे अमरीका से भी युद्ध ठानना पड़े।

यह सब तो था ही, 'सन्धि-परिषद्' में पश्चिमीय राष्ट्रों ने जिस प्रकार काम बाँटा है उससे भी एशियानिवासी यह भली प्रकार समझ गए हैं कि यदि अपनी क़िस्मतों का फैसला वे अपने हाथों में नहीं लेते तो भविष्य में अपना अस्तित्व खो बैठने के सिवा उनके लिए और कुछ शेष नहीं है।

एशियानिवासी सर उठायेंगे इसलिए संसार की शान्ति के लिए एशिया का स्वतंत्र होना बहुत ज़रूरी है। एशिया के स्वतंत्र और प्रबल होने की आवश्यकता इसलिए भी है कि वह राजनीति में धर्म और उदारता को जगह दे और मानवी सभ्यता के जहाज़ को इन्द्रियपरायणता (materialism) तथा अन्य नाशकारी चट्टानों से टकराने से बचावे।

[२८ मई, १६३५ ई०]

——

हिटलर का सङ्गठन

. [लेखक का गम्भीर वक्तव्य है कि "संसार के निवासियों को हिटलर के सङ्गठन का रहस्य समझना चाहिए। एक पददलित जाति किस तरह बड़ी होती है यह सबक़ जर्मनी से सीखा जा सकता है।"

—सम्पादक]

संगठन की चर्चा करने के पहले पाठकों को हम 'मेमल' की याद दिला देना चाहते हैं। हम पहले कभी लिख चुके हैं कि मेमल और डेनज़िग को प्राप्त करने के लिए जर्मनी अत्यन्त उत्सुक है। मेमल युद्ध के पहले जर्मनी का ही था, यहाँ लोहे की खानें हैं और यह जर्मनी का एक औद्योगिक और व्यापारिक केन्द्र है। वार्साई की सन्धि के समय मित्रराष्ट्रों ने इसे लुथीनिया को दे दिया। लुथीनिया को छोटा सा राष्ट्र ही बना दिया गया। अब जर्मनी का दाँत मेमल पर है। लुथीनिया अब जर्मनी से अपनी रक्षा भी नहीं कर सकता, क्योंकर कि जब पोलैण्ड का रुख जर्मनी के पक्ष में है। जर्मनी के पक्ष में आन्दोलन करने के लिए अभी कुछ मनुष्यों को फाँसी और कठिन कारागार की सजाएँ दी गई हैं। जर्मनी इससे बिगड़ गया है। जर्मन जनता पुकार मचा रही है कि पूर्वीय सीमा पर सेना भेजी जाय, लुथीनियन दूतावास के सामने अभी जर्मनों ने प्रदर्शन भी किया था। स्थिति चिन्ताजनक ही है किन्तु हम समझते हैं कि स्ट्रेसा कान्फरेन्स के कारण अकेला होने से जर्मन शान्त ही हो जायगा क्योंकि उसके कुछ करते ही उस पर फ्रान्स, रूस सभी चढ़ दौड़ेंगे।

इस कथा को अब यहीं पर छोड़ कर हम आज हिटलर के संगठन की कुछ चर्चा कर देना चाहते हैं। यह हम पहले ही कह

चुके हैं कि जिस समय हिटलर क्लब का सदस्य बना उसका नंबर सातवाँ था, अर्थात् उसके साथ केवल ६ आदमी थे और कोष में कुल ७ शिलिङ्ग ६ पेन्स अर्थात् पाँच रुपये से भी कम था। आरंभ इतने से हुआ और पाँच वर्ष में हिटलर के साथियों की संख्या १,३१,३३,००० हो गई।

यह कैसे हुआ ?

स्वभावत: यह प्रश्न सब ही के हृदय में उठेगा। सन् '२० में ही हिटलर के ६ साथियों का दल बना था। इसी समय के करीब महात्माजी ने भी देश की बागडोर अपने हाथों में ली थी। महात्माजी जब आगे बढ़े तो उनके साथ कम से कम बीस हज़ार आदमी थे, हिटलर के साथ कुल ६। हिटलर ने क्या जादू कर दिया कि आज यूरुप के राष्ट्र जर्मनी के नाम से चौंक पड़ते हैं।

संसार के निवासियों को इसके रहस्य को जानना और समझना चाहिए। एक पददलित जाति किस तरह खड़ी होती है यह सबक़ जर्मनी से सीखा जा सकता है।

सबसे पहले जो बात इस सम्बन्ध में हम कहना चाहते हैं वह यह है कि हिटलर के दल के जो सिद्धान्त और नियम १९२० में थे जिस समय कि उसमें ६ सदस्य ही थे, वे ही नियम और उद्देश्य उसके आज भी हैं, जब हिटलर जर्मनी का विधाता है और जर्मन राष्ट्र के निवासी उसके पुजारी और भक्त हैं। २४ फरवरी, १९२४ को म्यूनिक्ष की सार्वजनिक सभा में दल के सिद्धान्त और उद्देश्य घोषित किये गये थे, उसी समय यह भी कहा गया था कि इनमें कभी कोई परिवर्तन न होगा। उद्देश्य आज भी वही है, केवल एक बात 'निजू सम्पत्ति' के सम्बन्ध में कुछ परिवर्तन जरूर हुआ है किन्तु अन्य बातों में जो उस समय कहा गया था, आज भी वही कहा जा रहा है। एक विराम या चिह्न

का भी फर्क नहीं किया गया। संभव है कुछ भाई हम से इस बात में सहमत न हों, उनका कहना हो कि समय और स्थिति के अनुसार परिवर्तन होने ही चाहिए किन्तु हमारा निवेदन यह है कि बहुत कुछ अशों में ठीक होता हुआ भी यह दल के लिए घातक है, विशेषकर उस अवस्था में जब कि आज के सिद्धांतों के बिलकुल ही विपरीत कल के सिद्धांत हों, वे परस्पर विरोधी और एकदम उलटे हों। हिटलर का दल जनसमुदाय का दल था उसमें सभी सिद्धांतों और विचारों के लोग आये थे और हिटलर के नेतृत्व की यह सब से बड़ी विशेषता है कि उसने सभी को एक ही रंग में रंगा, सब को खुश रखा और सब को अपनाये रहा। दल की शक्ति, उसकी दृढ़ता और कार्य सिद्धि था शरीर के त्याग का संकल्प है। सिद्धांत और उद्देश्य एक बार ही तय हो जाते हैं, उनका रूप बदले भी तो शरीर वही रहता है। हिटलर की सफलता का दूसरा विशेष कारण यह था कि जर्मन अपने मरे हुओं को भूले नहीं, वे अपमान की कालिमा को धो डालने पर तुले हुए थे। दल में व्यवस्था थी, साथ ही नियम ऐसे थे जिनका पालन ईमानदारी के साथ साधारण से साधारण मनुष्य कर सकता है। उद्देश्य सभी आकर्षक थे। संसार के समस्त जर्मन, जहाँ कहीं भी हों, एक जर्मन साम्राज्य की छत्रछाया में हों। दुनियाँ के राष्ट्र इस बात को मान लें कि जर्मनो को वे समस्त अधिकार जो दूसरे राष्ट्रों के हैं, प्राप्त हैं। वार्साई और सेन्ट जरमेन की संधि रद्द की जाय। अपनी बहुसंख्या के पालन-पोषण के लिए जर्मनी के पास उपनिवेश हों। यहूदी, जर्मन जातियाँ राष्ट्र के अङ्ग नहीं हो सकते, राष्ट्र के मामलों में उनको वोट देने का हक़ न होगा, वे ग़ैर है और ग़ैरों की भांति उनके साथ व्यवहार होगा। हिटलर ने बहुत कुछ सम्पादित कर लिया है, हमारा भी यही खयाल था और बहुत से अन्य भाइयों का भी ऐसा ही खयाल है कि हिटलर

मुसोलिनी का चेला है, जर्मनी ने फेसिज्म इटली से सीखा है, सत्य बात है कि मुसोलिनी के दो वर्ष पहले हिटलर ने यह सब शुरू किया था, और जो कुछ उसने किया उसका एकमात्र श्रेय उसी को है। हिटलर ने एक बात में मुसोलिनी की नक़ल की है और वह है अपने राजनीतिक दल की रक्षा के लिए एक निजी सेना का रखना। आरंभ में हिटलर के पास यह सेना न थी, सेना के मामले में मुसोलिनी से जरूर शिक्षा उसने ग्रहण की है। इस सम्बन्ध में सत्य की रक्षा के लिए यह कह देना जरूरी है कि जर्मनी में उस समय अन्य राजनीतिक दलों के नेताओं ने निजी सेना संगठित कर रखी थी। मुसोलिनी की तरह हिटलर ने अपने सैनिकों को बदामी रंग की पोशाक दी। ये सब एक स्थान में मकानों में रखे गये। उनके भोजन का वह प्रबन्ध करता था, साथ ही वह इन सब को रोजगार में लगाने की फिक्र करता था, इन बातों का फल यह हुआ कि चारों ओर से नवयुवक जमा होने और इसके अनुयायी बनने लगे। अन्य निजी सेनाओं की अपेक्षा हिलटर की सेना अधिक सुसंगठित और अच्छी थी। इसी से उसका रंग धीरे-धीरे जम गया और दूसरे का फीका पड़ गया। सेना १९३० में जर्मनी के कोने-कोने में फैल गई। सब का एक मात्र नायक हिटलर ही था। हिटलर की आज्ञा सब के लिए वेद-वाक्य के समान थी। यह सेना टुकड़ों में बँटी हुई थी। और यह टुकड़े अपने-अपने स्थान के अपने दल की राजनीतिक संस्थाओं की रक्षा किया करते थे। कभी-कभी इन टुकड़ों पर एक ग्राम की रक्षा का भार रहता था और शहरों और कसबों में एक-एक सड़क का। इसका नतीजा यह था कि ये सैनिक अपने स्थान के प्रत्येक मनुष्य, उसके विचारों और उसकी रहन-सहन से वाकिफ होते थे। छोटी से छोटी बात की इत्तिला हिटलर को दी जाती थी। शासन पूरी तरह से हिटलर में केन्द्रित था। हर बात की उसे

खबर दी जाती थी, और प्रत्येक बात के बारे में उसी का हुक्म आता था। हिटलर को इस तरह से जर्मनी के प्रत्येक निवासी की खबर थी और यह किसी की मजाल नहीं थी कि उसकी आज्ञा के विरुद्ध कोई आचरण करे। आज हिटलर अपने इसी संगठन की सहायता से संसार में हुंकार कर रहा है और उसके भय से योरुप के राष्ट्र काँप रहे हैं। फ्रांस, रूस और यूगोस्लाविया राष्ट्रों में संधि स्थापित हो गई है। यह भी खबर है कि इङ्गलैंड और फ्रांस में कोई गुपचुप समझौता होगया है। कम से कम हवाई बेड़े और आक्रमण होने पर हवाई बेड़ों से परस्पर सहायता का तो कुछ समझौता जरूर है। इटली, फ्रांस, रूस और यूगोस्लाविया के एक होने से जरूर असन्तुष्ट है। क्योंकि डेन्यूब नदी के तट-प्रदेश के सम्बन्ध में उसे यूगोस्लाविया से भीतरी झगड़ा है। किन्तु इटली फ्रांस से एक अलग सैनिक समझौता करने को बहुत उत्सुक है। पाठकों को हाल ही में छपे हुए एक अमरीकन समाचार को भी ध्यान में रखना चाहिए। समाचार यह है कि प्रेसीडेन्ट रूजवेल्ट ने यह आज्ञा जारी की है कि सेना-संचालन-सम्बन्धी दाँव-पेच के नकशे किसी तरह से प्रकट न होने पावें। मामला यह था कि एक नकशा लोगों को मालूम हो गया। नकशे में आयोजन इस प्रकार का था कि समय पड़ने पर अमरीकन सेना किस प्रकार से आस-पास के ब्रिटिश और केनाडा के द्वीपों पर कब्जा करेगी। और कुछ हो या नहीं, इस नकशे से इतना तो सिद्ध ही है कि अगर प्रशान्त महासागर के महाभारत में इंगलैंड ने जापान का साथ दिया तो अमरीका आस-पास के ब्रिटिश द्वीपों को हड़प लेगा। अमरीका यह सोच सकता है कि महासमर में इंगलैण्ड और वह परस्पर विरोधी हो सकते हैं।

[४ जून, १९३५ ई०

काँग्रेस कगारे पर

[सन् १९२० में......होने वाले कांग्रेस महाधिवेशन की आलोचना करते हुए कांग्रेस के कर्णधार स्वयं पंडितजी ने यह भविष्यवाणी की कि "माननीय देशभक्त और कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं के बावजूद महात्मा गांधी का प्रस्ताव पास हो जाना उनके सिद्धान्तों की नहीं बल्कि व्यक्तित्व की विजय है। इसका परिणाम भविष्य में बुरा होगा। कांग्रेस मतभेदों और दलबन्दियों का शिकार हो जायगी। ऐसी स्थिति में कांग्रेस की नैया तूफ़ान में पड़ी है। यह किनारे लगेगी या लहरों के भीषण थपेड़ों से या नाविकों के मतभेद से रसातल को पहुँचेगी। किन्तु हमारा विश्वास है कि जो कुछ हो रहा है, वह अच्छा हो याबुरा, कुछ काल के अनन्तर वह शुभ फल का देनेवाला ही सिद्ध होगा।"

इस लेख में व्यक्ति और विचारों की आलोचना में मस्तिष्क का मानदण्ड है।

—सम्पादक]

काँग्रेस का विशेष अधिवेशन बड़े समारोह के साथ समाप्त हो गया। इसके पहले काँग्रेस के इतिहास में किसी काँग्रेस में इतना उत्साह और साथ ही साथ इतनी चिन्ता कभी नहीं देखी गई। प्रत्येक नेता अपने कर्त्तव्य—पालन के लिए चिन्तित था। जिसको देखिए वही इस विचार में लीन था कि क्या होना चाहिए? बहस और विचार भी जितना हुआ, उतना पहले किसी कांग्रेस में नहीं हुआ था। दूसरी तारीख़ तक अधिकतर नेता कलकत्ते पहुँच गये थे। कांग्रेस ता० ४ से शुरू होनेवाली थी किन्तु परस्पर विचार कर कोई बात स्थिर करने के लिए और कर्त्तव्य-कर्म को निश्चित करने के लिए सभापति लाला लाजपतरायजी ने मुख्य-

मुख्य नेताओं को अपने भवन में एक सभा में सम्मिलित होने के निमित्त निमन्त्रित किया था। सभा ११ बजे से आरम्भ होने को थी और धीरे-धीरे करके देश के सभी गण्यमान्य नेता उपस्थित हो गये थे। उसी दिन संध्या को आलइण्डिया कांग्रेस कमेटी की बैठक भी होने को थी वह ५ ही ७ मिनट में स्थगित कर दी गई क्योंकि सभापति के भवन में दिन भर विचार होने के बाद भी सब बात अनिश्चित ही थी। कांग्रेस कमेटी के बाद सभा फिर बैठी, बहुत देर तक वाद-विवाद होता रहा किन्तु फिर भी कोई निश्चय न हो सका।

४थी ता० से कांग्रेस आरम्भ हुई किन्तु तब भी कोई बात निश्चित न हो पाई थी। असहयोग के प्रस्ताव के सम्बन्ध में भीषण मतभेद था। कांग्रेस के आरम्भ होने पर स्वागत समिति के सभापति मि० व्योमकेश चक्रवर्ती की वक्तृता के बाद

लाला लाजपतरायजी

का बड़ा जोरों का व्याख्यान हुआ। लालाजी की जो वक्तृता छपकर वितरित हुई थी, कांग्रेस के इतिहास में सब से लम्बी-चौड़ी वक्तृता थी। फुलसकेप के प्रायः ५६ पृष्ठों में वह छपी थी। ४८ पृष्ठों में पञ्जाब की नादिरशाही की चर्चा थी और बाक़ी ८ पृष्ठों में खिलाफ़तें और भारत की अन्य समस्याओं का दिग्दर्शन था। लालाजी ने व्याख्यान को पढ़ा नहीं, उन्होंने धारा-प्रवाह, ओजभरी भाषा में वक्तृता की मुख्य-मुख्य बातों को कह सुनाया। बड़ा ही प्रभावशाली व्याख्यान था। इसके बाद।

विषय-निर्वाचिनी समिति

का चुनाव हुआ। बड़ी धींगा-धींगी थी और खेद से कहना पड़ता है कि अनेक प्रान्तीय कमेटियों के मंत्रियों ने अनुचित कार्यवाही की। उन लोगों ने विषय-निर्वाचिनी समिति को "वोट देने

वाली समिति" समझ लिया था। सदस्य इस विचार से नहीं चुने जाते थे कि विचार या वाद में कोई भाग लेंगे या विषयों पर विचार करने की उनमें कोई शक्ति है। उनके चुनाव की कसौटी यह थी कि वे

असहयोग के पक्षपाती

वह भी कट्टर, हैं या नहीं। चुनाव में एक धींगा-धींगी यह भी थी कि अधिकतर सदस्य खिलाफ़त कमेटी के या मुस्लिम चुने जाते थे। हमको मुसलमानों या खिलाफ़त कमेटी के सदस्यों से वैर या विरोध नहीं। हाँ, इस बात को निःसंकोच कह सकते हैं कि वे खिलाफ़त के लिए प्राण निछावर करने को तैयार हैं किन्तु हमारा कहना यह है कि विषय-निर्वाचिनी समिति के सदस्यों में इतने ही गुणों की आवश्यकता नहीं। विषय-निर्वाचिनी समिति विचार करनेवाली एक संस्था है। उसमें देश के विचारशील मनुष्यों को और उसको, जो पिछले कितने ही दिनों से कांग्रेस की सेवा कर रहे हैं, सुचारुरूप से स्थान मिलना चाहिए। अस्तु, विषय-निर्वाचिनी समिति के चुनाव से अनेक प्रान्तों के सदस्य घोर असन्तुष्ट थे। चुनाव हुआ और दूसरे दिन विषय-निर्वाचिनी समिति की बैठक होनेवाली थी किन्तु फिर भी सभापति के भवन में देश के हिन्दू और मुस्लिम नेता एकत्रित हुए।

असहयोग के प्रश्न

पर विचार आरम्भ हुआ किन्तु फिर भी सब कुछ अनिश्चित ही रहा। महात्मा गांधी के प्रस्ताव का, खिलाफ़त कमेटी के सदस्यों को छोड़कर कोई भी समर्थन करनेवाला नहीं था। बिना कुछ निश्चित हुए रात्रि अधिक हो गई और सभा विसर्जित हुई। दूसरे दिन वि० नि० समिति की बैठक आरम्भ हुई। आरम्भ के दो-एक प्रस्तावों के हो जाने के बाद असहयोग का मुख्य प्रस्ताव

पेश हुआ। रात्रि ८ बजे तक सभा होती रही। नेता अपने-अपने विचार प्रकट कर रहे थे और कोई बात तै नहीं होती थी। अन्त में दूसरे दिन के लिए सभा स्थगित की गई। कांग्रेस में, आरम्भ के जो प्रस्ताव तय हो चुके थे, पेश हुए और कांग्रेस स्थगित हो गई। वि० नि० समिति फिर बैठी और विचार आरम्भ हुआ। दिग्गज नेताओं में महात्मा गांधी का समर्थन करने वाला कोई नहीं मिला था। माननीय मालवीय जी का कहना यह था कि हम लोगों को तुरन्त ही

पूर्ण स्वराज्य की घोषणा

करनी चाहिए। खिलाफ़त, पंजाब बड़े मार्के के प्रश्न होते हुए भी अंशमात्र हैं। पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करके ही हम ऐसी दुर्घटनाओं का होना बन्द कर सकते हैं। उनका यह कहना था कि ब्रिटिश मंत्रि-मण्डल को अन्तिम सूचना भेज दी जाय। उससे कह दिया जाय कि हम पूर्ण स्वराज्य लेंगे। इंगलैण्ड में, फ्रान्स में, इटली और अमरीका में हम लोग आन्दोलन करें, देश में हम लोग ग्राम-ग्राम और क़स्बे-क़स्बे में पंचायत-सभा क़ायम करें और शान्ति स्थापित रखने के लिए हम लोगों को शीघ्र ही

नागरिक सेना

का संगठन करना चाहिए। मि० जिन्ना की भी यही राय थी। मि० बेसेण्ट का दल असहयोग का विरोधी था। लो० तिलक का दल यह कह रहा था कि हमको श्रमजीवियों का संगठन करना चाहिए। रेल, तार, मिलवालों सभी का एक संघ होना चाहिए। कौंसिलों के बायकाट के द्वारा नहीं, वरन् हड़ताल कराकर और अँगरेज़ी व्यापारियों का काम बन्द कराकर, उनकी वस्तुओं का बहिष्कार कराकर हम शासन की मशीन को क्रिया-हीन बना देंगे। मि० दास और मि० पाल का प्रस्ताव दूसरा ही

था। असहयोग के सिद्धान्त को मनाते हुए उनका कहना यह था कि राष्ट्रीय स्कूलों को खोलना चाहिए। पंचायत ग्राम-ग्राम में स्थापित करनी चाहिए, किन्तु यह न करके स्कूलों का बायकाट, कौंसिलों का बायकाट देश के लिए विष होगा। अन्त में यह देखकर कि कोई साथ नहीं, पं० मोतीलालजी को साथ में करने के लिये म० गांधी ने अपने प्रस्ताव में इतना परिवर्तन कर दिया कि वकील वकालत धीरे-धीरे छोड़ें और लड़के स्कूलों से धीरे-धीरे उठाये जायें। वास्तव में धीरे-धीरे का अर्थ यह है कि वकील वकालत कभी न छोड़ें और लड़के स्कूलों से कभी न उठाये जायँ, किन्तु शाब्दिक आडम्बर की चकाचौंध में महात्मा गांधी ने मर्म को भले प्रकार समझते हुए भी धीरे-धीरे शब्द का जोड़ा जाना स्वीकार कर लिया और वोट ली जाने पर महात्मा गांधी का संशोधित प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। कांग्रेस को दूसरे दिन की बैठक कांग्रेस के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखी जायगी। देश के सब गण्यमान्य नेता बोले और सबों ने एक स्वर से महात्मा गांधी के प्रस्ताव का विरोध किया। कांग्रेस की बैठक आरम्भ होने के पहिले एक बार समझौता करने की चेष्टा की गई थी और इसी कारण से कांग्रेस ठीक समय पर आरम्भ न होकर डेढ़ घण्टे बाद आरम्भ हुई किन्तु फिर भी समझौता न हो सका। कांग्रेस की बैठक आरम्भ होते ही सर आसुतोष चौधरी ने, जो कि कलकत्ता हाई कोर्ट की जजी से इस्तीफा देकर भारत के राजनैतिक क्षेत्र में आ गये हैं, यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि

कांग्रेस स्थगित की जाय

किन्तु यह प्रस्ताव पास न हो सका क्योंकि जनता—विशेषकर भावुक और विचारहीन—यही चाहते थे कि प्रस्ताव पास हो। प्रस्ताव के विरोध में उन लोगों ने भी वोटें दी थीं, जो असहयोग

के सिद्धान्त में विश्वास करते हैं किन्तु जो यह चाहते थे कि असहयोग का प्रस्ताव व्यावहारिक रूप में उपस्थित हो।

प्रस्ताव उपस्थित हुआ

और प्रान्त के नेता, जो आज तक जनता की सेवा करते आये हैं और जिनकी आवाज़ कांग्रेस मण्डल में सब से ऊँची गूँजा करती थी महात्मा गांधी के प्रस्ताव का विरोध करने लगे। रात्रि के ८ बज गये किन्तु वक्ताओं की सूची का अन्त न था। यदि जिन वक्ताओं ने सभापति से बोलने की आज्ञा चाही थी, उनको बोलने का अवसर दिया जाता तो यह सम्भव था कि रात भर वक्तृताएँ जारी रहतीं किन्तु यह सम्भव न था और यह तय किया गया कि वोट पर मामला छोड़ दिया जाय। उस समय यदि वोटें भी ली जातीं तो आधी रात योंही व्यतीत हो जाती। इसलिए यह तै हुआ कि कांग्रेस स्थगित करके वोट दूसरे दिन ली जाय। वोट दूसरे दिन ली गई और १७,८२६ वोटें म० गांधी के पक्ष में और ८८५ उनके विरुद्ध आईं। इसके बाद सभापति लाला लाजपतराय ने यह फैसला देकर कि महात्मा गांधी का प्रस्ताव पास हो गया, एक बड़ी ज़बर्दस्त वक्तृता में महात्मा गांधी के प्रस्ताव का ज़ोरदार खंडन किया। प्रस्ताव के प्रत्येक अंश का उन्हाने खंडन कर दिया किन्तु उन्होंने यह कहा कि जब प्रस्ताव पास हो गया है तो मुसलमानों को उसे कार्यरूप में परिणत करना चाहिए और यदि मुसलमान अग्रसर हों तो हिन्दुओं को उनका दिल से साथ देना चाहिए।

इन सब बातों से यह साफ़ सिद्ध है कि देश का मस्तिष्क म० गांधी के प्रस्ताव के विरुद्ध था। मा० मालवीय जी और लाला लाजपतराय, मि० जिन्ना और मि० दास, मि० पाल और मि० कस्तूरीरंग आयंगर, मि० सत्यमूर्ति और मि० केलकर,

मि० वप्टिस्टा और मि० विजयराघवाचार्य, सर आशुतोष चौधरी और दीवान बहादुर वी० पी० माधवराव आदि देश के सभी अग्रगण्य नेता म० गांधी के प्रस्ताव के विरुद्ध थे। प्रस्ताव पास हुआ, यह महात्मा गांधी के

व्यक्तित्व की विजय

है किन्तु इस विजय से देश के राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं में दल-बन्दी और मतभेद की भी आशंका है। कांग्रेस या हमारी राष्ट्रीय नौका इस समय तूफान में पड़ी हुई है। यह किनारे लगेगी, या लहरों के भीषण थपेड़ों से या नाविकों के मतभेद से रसातल को पहुँचेगी, यही विषम समस्या है। हमको देश के सुन्दर भविष्य में विश्वास है। हमारा विश्वास है कि जो कुछ हो रहा है, वह अच्छा हो या बुरा, कुछ काल के अनन्तर वह शुभफल का देनेवाला ही सिद्ध होगा। हमारा यह भी विश्वास है कि भारत के स्वर्ण-दिवस का उदय शीघ्र ही होनेवाला है। इसी विश्वास से हम चिन्तित होते हुए भी चिन्ताग्रस्त नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि महात्मा गांधी के प्रस्ताव की सफलता के लिये यह आवश्यक है कि देश में प्रचार का काम ज़ोरों से किया जाय। सफलता काम करने के बाद एक प्रकार से निश्चित है। कठिनाई जो मार्ग में है, वह यह है कि जो लोग यह समझते हैं कि म० गांधी के प्रस्ताव के कुछ अंश देश के लिए इस स्थिति में हानिकर हैं, वे क्या करेंगे? इस सम्बन्ध में हम किसी अगले अध्याय में विचार करेंगे।

तूफ़ान में काँग्रेस

[सन् १९२० में कांग्रेस की स्थिति "आधा तीतर आधा बटेर" बन रही थी। जाग्रति, जागरूकता पैदा होते हुए भी मत-भेद आगे नहीं बढ़ने देता था।

लेखक ने अपने राजनैतिक ज्ञान के आधार पर यह भविष्यवाणी की थी कि "जब कोई देश अधोगति को प्राप्त होता है, कोई जाति निर्वीर्य होती है तो उसमें वीर-पूजा का भाव उत्पन्न करके ईश्वर उसके अस्तित्व को सुरक्षित और उन्नतशील बनाता है। यही दशा भारत की है। किन्तु अड़चनें अधिक हैं। हम अड़चनों से भयभीत नहीं हैं किन्तु डरते हैं मतभेद से।"

लेखक का अभिप्राय असहयोग आन्दोलन को पुष्ट और प्रचलित करने का है।—सम्पादक]

कांग्रेस की नौका तूफान में पड़ी हुई है, वह किनारे लगेगी या लहरों के थपेड़ों और नाविकों के मतभेद से रसातल को पहुँचेगी यह विषम स्थिति हम लोगों के सामने उपस्थित है। कांग्रेस में जो कुछ होना था, हो चुका, उसका रोना हमको नहीं और न उससे झगड़ना हम अपना कर्त्तव्य समझते हैं। जो कुछ फैसला हुआ वह देश के लिए हानिकर है और वह उचित न था, यह हमारी राय है, यदि सिद्धान्त से नहीं तो हमारी राष्ट्रीय नौका के कर्णधारोंको अलग करने के कारण ही वह हानिकर हो सकता है किन्तु इसके हाथ ही हमारा मत यह भी है कि हम लोग मनुष्य हैं और हमारा दृष्टि-पथ परिमित है। ऐसी दशा में यह असम्भव नहीं कि जो हमारे संकुचित दृष्टि-पथ से हानिकर दिखाई देता

अमर सेनानी
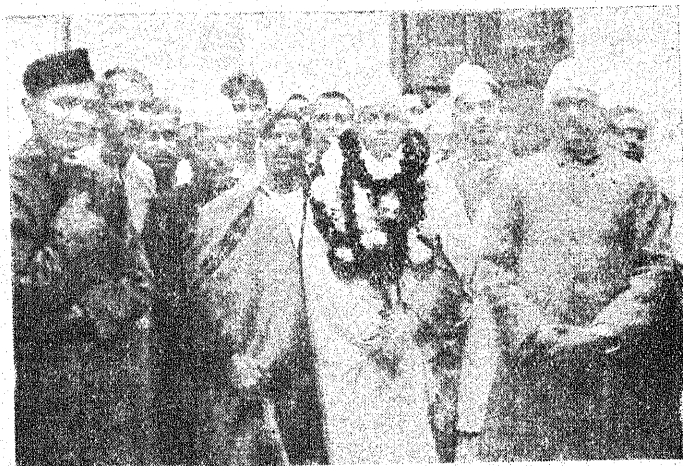
हाथों में हथकड़ियाँ पहिने,
पहिन गले में जयमाला ।
करता है प्रस्थान जेल को,
बन्दी वीर निराला ॥

—'विरक्त'

हो, वही शुभ फल का देनेवाला हो। सम्भव है कि जो म० गांधी ने सोचा हो फल उसके विरुद्ध हो और संभव यह भी है कि फल जितना उन्होंने सोचा हो उससे कहीं अधिक विस्तृत हो। होगा क्या, यह कोई नहीं कह सकता किन्तु यह सत्य है कि हम लोगों ने एक

क्रांति के युग में

पग बढ़ा दिया है। जिन लहरों के सहारे हमारी राष्ट्रीय नौका अग्रसर हो रही थी, उनका उसने परित्याग कर दिया है, उसने प्रचंड वेग से बहनेवाले, अनिश्चित समुद्र-पथ में अपना एक नूतन पथ खचित कर लिया है और उसका भविष्य उसके नाविकों के हाथों में ही नहीं वरन् समय और समुद्र की दशा पर बहुत कुछ निर्भर है। पथ कंटकाकीर्ण है। भयावह है और साथ ही यात्रियों के लिए सुगम नहीं। ऐसी स्थिति में यह बहुत आवश्यक था कि हम अपनी शक्ति बढ़ाते, हमारी सेना के सैनिकों की संख्या वृद्धि प्राप्त करती, हम अनेक होते हुए एक होते किन्तु हम देख रहे हैं कि हमारे बड़े-बड़े कप्तान, जनरल और कमांडर अपने पद से इस्तीफा देकर हमसे अलग हो रहे हैं। मद्रास से

तीन इस्तीफे

प्राप्त हो चुके हैं। "हिन्दू" के सम्पादक मि० कस्तूरीरंग आयंगर, "स्वदेश मित्रम्" के सम्पादक मि० रंगस्वामी ऐयर और पिछली कांग्रेस के लाड़ले मि० सत्यमूर्ति ने मद्रास प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी में अपने-अपने इस्तीफे भेज दिये हैं। अन्य प्रान्तों से भी लोग इस्तीफे दे रहे हैं या देने की तैयारी कर रहे हैं। वास्तव में इन इस्तीफों का कांग्रेस पर असर वही होगा जो वर्गबाजी से हो सकता था। भविष्य में क्या होगा यह कहा नहीं जा सकता किन्तु निकट भविष्य में यह निर्विवाद सत्य है कि इन

इस्तीफों से हानि होगी और कांग्रेस के भीतर ही नहीं वरन् सम्भव है कि बाहर एक Independent Nationalist Party स्वतंत्र राष्ट्रीय दल पैदा हो जाय। यह दल लिबरल दल से भिन्न होगा क्योंकि दोनों के दृष्टिकोण में बहुत अन्तर है, साथ ही यह कांग्रेस दल के साथ काम न कर सकेगा क्योंकि वह सदा इनकी बातों की अवहेलना करेगा और दोनों के दृष्टिकोण में अन्तर होगा। विगत तीन चार वर्षों से कितने ही कार्यकर्त्ताओं को एक ऐसे दल के संगठन की आवश्यकता प्रतीत होती थी। इस दल की उत्पत्ति देश के लिए हितकर भी होती किन्तु वर्तमान स्थिति में यदि इस दल ने जन्म लिया तो यह कदाचित् अच्छा न होगा।

महात्मा गांधी

ने कदाचित् इस ओर ध्यान नहीं दिया था। म० गांधी कह रहे हैं कि कम संख्या वालों को कांग्रेस का त्याग न करना चाहिए, कलकत्ते के विशेष अधिवेशन में कई बार उन्होंने इस बात पर जोर दिया था किन्तु महात्मा जी को कदाचित् यह स्मरण नहीं है कि

व्यक्तिगत अंतःकरण

के आदेश की दोहाई महात्मा जी ही ने दी थी और १९१६ की बम्बई की कांग्रेस के समय में, जब कि लो० तिलक के दल को कांग्रेस में अनेक नेता सम्मिलित करना चाहते थे, महात्मा जी ने एक मित्र से कहा था कि यह कैसे हो सकता है, क्योंकि लो० तिलक और कांग्रेस के मत और कार्यक्रम में जमीन असमान का फर्क है। आज काग्रेस में, जो दिखावे में कम संख्या में थे, उनके और महात्मा जी के कार्यक्रम और मत में जमीन आसमान का फर्क है या नहीं ?

जब कोई देश अधोगति को पहुँच जाता है, जब कोई जाति

निर्वीर्य होने के तट तक पहुँच जाती है उस समय उसके अस्तित्व को बनाये रखने के लिए ईश्वर उसमें "वीर-पूजा" का भाव जाग्रत कर देता है, वह जाति अपने भाग्य का फैसला एक नेता के हाथ में सौंप देती है और यदि नेता चतुरता से काम करता रहा तो

जाति का उत्थान

निश्चित होता है। भारत की भी इस समय कुछ ऐसी ही दशा है किन्तु हमारे मार्ग में अड़चने अनेक दिखाई देती हैं। हम अड़चनों से भयभीत नहीं किन्तु हम डरते हैं मतभेद से।

बात-बात में मतभेद है, म० गांधी का कहना है कि कांग्रेस का सदस्य होते हुए भी कांग्रेस के प्रस्ताव के विरुद्ध कोई मनुष्य काम कर सकता है। मा० मालवीय जी का कहना है—यदि सहयोगी "हिन्दू" के संवाददाता का विश्वास किया जाय कि हम कौंसिल में जायँगे साथ ही हम कांग्रेस से अलग तब तक न होंगे जब तक कि इसके लिए हम विवश न हो जायँ। मि० बैप्टिस्टा, मराठा दल के सभापति का कथन यह है कि महात्मा गांधी ने कांग्रेस की या अपनी कब्र खोद ली है। हम लोगों को अधिक संख्या में नागपुर में उपस्थित होकर अगली कांग्रेस में कांग्रेस के फैसले को रद्द कराना चाहिए किन्तु जब तक यह न हो जाय, किसी कांग्रेस के सदस्य का कांग्रेस के फैसले के विरुद्ध कार्य करना ठीक न होगा। बंगाल के राष्ट्रीय दल के नेताओं ने, मि० दास ने, मि० चक्रवर्ती ने अपने साथियों के हस्ताक्षर सहित एक घोषणा-पत्र निकाल दिया है कि हम लोग कौंसिल में न जायँगे। मि० पटेल ने बड़े लाट की कौंसिल में अपना इस्तीफा भेज दिया है। साथ ही साथ उन्होंने यह भी घोषित किया है कि वे कौंसिल में न जायँगे और न किसी जाने-वाले को वे वोट देंगे। बिहार के नेता चुप हैं, मि० हसन इमाम

कांग्रेस में आये नहीं और मि० जिन्ना का पता नहीं कि वे क्या करेंगे। नेताओं की दशा यह है।

जनता क्या करेगी

सो भी नहीं कहा जा सकता। वोट महात्मा जी के पक्ष में अधिक आई किन्तु यह किसी से छिपा नहीं कि वोट देनेवालों में लोग ऐसे भी थे जो कांग्रेस का तमाशा देखने गये थे, जिन्होंने वोट दिये बिना इस खयाल के कि प्रस्ताव उनके लिए भी मान्य है। एक दशा यह है दूसरी ओर यह भी प्रत्यक्ष है कि कितने ही, जो आरम्भ से अन्त तक महात्मा जी के विरुद्ध राय देते रहे, अब कांग्रेस और ऐक्य के नाम पर महात्मा जी के साथ हैं। कितने ही ऐसे भी हैं जो प्रस्ताव के विरुद्ध कार्य करेंगे। देश पर इन बातों का क्या असर पड़ेगा, देश की स्थिति के लिए यह कहाँ तक लाभकर या हानिकर होगा, यह विकट समस्याएँ हमारे सामने खड़ी हुई हैं। कांग्रेस की नौका तूफ़ान में है और देश की क़िस्मत का फ़ैसला एक वर्ष में नहीं बरन् ६ मास में ही होता दिखाई देता है।

[ता० १८ सितम्बर, १९२१]

मिनिस्टरी

[सन् १९३७ में कांग्रेस के मंत्रि-पद ग्रहण के पक्ष में पं० कृष्णकान्त मालवीय के राष्ट्रीय राजनैतिक मस्तिष्क ने यह व्यवस्था दी—"कि ध्येय की सिद्धि के लिए सिद्धान्तों की हत्या भी की जा सकती है। सिद्धांत स्वयं ध्येय नहीं है वे ध्येय की सिद्धि के लिए साधन-मात्र हैं। इसलिए व्यर्थ में कोरे सिद्धांतों की दुहाई नहीं देनी चाहिए बल्कि व्यावहारिक दृष्टि से कर्त्तव्य पर विजय करनी चाहिए।"

इस विचार-पूर्ण लेख में विद्वान् लेखक ने सभी प्रान्तों के कांग्रेसी व्यक्तियों की आलोचना मनोवैज्ञानिक ढंग से करते हुए कहा है कि मन्त्रि-पद वही स्वीकार करेंगे जो क्रान्तिकारी विचारों के हैं। यू० पी० इन विचारों के व्यक्तियों से भरा-पूरा है। यहाँ के मन्त्री गवर्नमेण्ट को बुढ़ने टेका सकते हैं।"

लेखक का इशारा था कि "यदि पदग्रहण किये जायँ तो परित्याग न किये जायँ ? क्योंकि दुनिया बदल रही है, सन् १९४३ तक में कौन राजा कौन योगी होगा यह पता नहीं, यदि हम ध्येय पर दृढ़ रहे तो ५ वर्ष में देश स्वतंत्र हो जायगा।"

विशाल अनुभव-सम्पन्न विद्वान् लेखक की भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य हुई। कांग्रेस यदि भूल न करती तो आज हम स्वतंत्र भारत के भारतीय होते !—सम्पादक]

सन् ३७ से ४२ तक में संसार का चक्का कई बार घूमेगा और दुनिया में भीषण उलट-पलट होंगे। कौन कह सकता है कि राजा कौन होगा, योगी कौन होगा ? देशवासियों को बहुत सोच-

समझकर कोई पग आगे बढ़ाना या पीछे हटाना चाहिए। एक भी भूल करने से हम इस समय सर्वनाश कर सकते हैं, साथ ही बुद्धिमता से काम करने में इन पाँच वर्षों में हम सफलतापूर्वक वह सब कर सकते हैं जो पिछले १५० वर्षों में हम नहीं कर सके और न कभी प्राप्त कर सकते हैं जिसे पिछले १५० वर्षों में हमने खो दिया है।

देशवासियों और देश के नेताओं से हमारी प्रार्थना इसलिए यह है कि वे कोरे पूर्व-निश्चित सिद्धांतों के दास न बनें, वे समय को देखें और पहचानें और स्थिति को देखते हुए स्वराज्य की प्राप्ति के लिए सर्वस्व को, जिसमें कोरे सिद्धान्त भी सम्मिलित हों, त्याग करने को तैयार हो जायँ। हमको

स्वराज्य प्राप्ति की वेदी

पर सर्वस्व निछावर करना है, हमको स्वप्न देखनेवाला साथ ही अत्यन्त व्यवहारिक, बनना है। हमको इस मूलमंत्र को समझना है कि सिद्धान्त-ध्येय की सिद्धि के लिए सिद्धान्तों की हत्या भी की जा सकती है। सिद्धांत स्वयम् ध्येय नहीं है, वे ध्येय की सिद्धि के लिए साधन मात्र हैं। इसलिए हमको व्यर्थ में कोरे सिद्धांतों की दुहाई नहीं देना है, हमको व्यावहारिक दृष्टि से ही कर्त्तव्य पर विचार करना है।

पंजाब में हम अधिक नहीं सफल हो सके, हमको पंजाब में वही सफलता प्राप्त हो सकती थी जिसे हमने युक्तप्रांत में प्राप्त किया, किन्तु पंजाबी नेताओं में इतना साहस और दूरदर्शिता न थी। पंजाब की स्थिति भी दूसरी है, क़ानूनन हमारा बहुमत पंजाब में हो नहीं सकता जब तक अधिक संख्या में मुसलमान भी हमारे साथ न हों। पंजाब की इसलिए चर्चा बेकार है। मद्रास में भी बहुमत हमारा हो गया, किंतु मद्रास के नेता, हमको भय है,

रचनात्मक कार्यों के प्रेमी हैं, वे क्रान्तिकारी नहीं, न क्रांतिकारी पथ पर उनके मस्तिष्क दौड़ सकते हैं। वे मिनिस्टर बनकर भी मिनिस्टर ही रहेंगे। बम्बई में हमको बहुमत की आशा नहीं, एसेम्बली में सबसे बड़ा दल कांग्रेस का हो सकता है, किन्तु एसेम्बली में कांग्रेसी सदस्यों का बहुमत होगा, ऐसा हमको विश्वास नहीं, उड़ीसा में हमारा बहुमत है, बिहार में हमारा बहुमत है, किन्तु बिहार को हम मद्रास का ही साथी समझते हैं, बङ्गाल में हमारा बहुमत नहीं, क़ानूनन हो भी नहीं सकता, साथ ही बङ्गाल में मुस्लिम लीग और श्री फजलुल हक़ के प्रजादल का शासन होगा, किन्तु यह सब होते हुए भी बङ्गाली भाई प्रान्त को ऊँचा भी उठा सकते हैं। मध्य प्रदेश और युक्तप्रान्त में हम जो चाहे कर सकते हैं। युक्तप्रांत में तो हम सरकार को घुटना टेकने पर मजबूर कर सकते हैं और कह सकते हैं कि यूँ नहीं यूँ चलना होगा।

हमारा इसलिए कहना यह है कि हमको मंत्रिपद स्वीकार करना चाहिए और स्वराज्य के युद्ध को अग्रसर करना चाहिये। शर्त इतनी ही है कि हमारे मंत्रिगण क्रान्तिकारी मस्तिष्क और विचार वाले हों, रचनात्मक कार्यों और कार्यक्रम के पुजारी नहीं। हमसे छिपा नहीं कि कांग्रेस में सब ही विचारों के लोग हैं। जिनको चुन-चुनकर व्यवस्थापिका सभाओं में भेजा है वे सब ही कांग्रेसी क्रान्तिकारी मस्तिष्कवाले भी नहीं हैं, हमको इसलिए मंत्रियों का चुनाव जरा बुद्धिमत्ता से करना होगा। इसके साथ ही साथ यह जरूरी है कि हमारा काम ग्रामों में उसी तरह से जारी रक्खा जाय जिस तरह से पिछले तीन महीनों में वह चलता रहा है। चुने हुए कांग्रेसी सदस्यों को अपने-अपने निर्वाचन क्षेत्रों में ही रहना चाहिए। पंचायतें क़ायम हो जानी चाहिए। मंत्री और ग्राम के निवासी एक सूत्र में जिसमें बँधे रहें और जिससे जो कुछ

हम एसेम्बली में करें उसपर ग्रामवासियों की मुहर हो। ग्रामवासी यह देख ही नहीं, अनुभव करें कि हम लोग देश से ग़रीबी को निकाल बाहर करेंगे और जल्द से जल्द किसी सुदूर भविष्य में नहीं अभी-अभी या कभी नहीं स्वराज्य को जन्म देंगे। हमको यह करके दिखला देना है कि हमारे मंत्रियों के पीछे जनता की, प्रत्येक ग्रामवासी की शक्ति लगी हुई है और हमारे मंत्रियों के साथ ही जनता उठेगी और बैठेगी।

सब से बड़ा रचनात्मक कार्यक्रम हमारा यह है और तब देखेंगे कि हमारे मंत्री क्या करके दिखा देंगे। कांग्रेस के पीछे इस समय दैवीशक्ति काम कर रही है, हमको उस शक्ति में ही विश्वास कर आगे बढ़ना चाहिए। कमजोरों, अपने में विश्वास न रखने वालों और "सफल नहीं होंगे" मस्तिष्कवालों को हमको दूर ही रखना चाहिए।

हमारा विश्वास है कि आगामी ५ वर्षों से हम स्वराज्य स्थापित कर सकते हैं। समय और परिस्थिति हमारे अनुकूल है अगर ईश्वर केवल हमको परिस्थिति से लाभ उठाने की बुद्धि दे। जो लोग मिनिस्टरी के विरुद्ध हैं उनको अपने आदमियों में विश्वास नहीं हैं। हम भी इस कठिनाई को समझते हैं। बम्बई, मद्रास, बिहार क्या करेगा ? कोई कह नहीं सकता। किन्तु हमारा कहना है कि युक्त प्रान्त के सर सेहरा है। पिछले बीस पचीस वर्षों से देश का नेतृत्व युक्तप्रांत के हाथ में रहा है। आज भी नेतृत्व उसी के हाथों छोड़ देना चाहिए। दूसरे प्रांतों के मंत्रिगण युक्तप्रांत के मंत्रियों के बताये हुए पद पर ही चलें।

पंडित जवाहरलालजी पद पर आसीन हैं किन्तु प्रभुताविहीन हैं, हम यह जानते हैं। किन्तु देश पंडित जवाहरलालजी के साथ रहेगा। अगर हम केवल इतना ध्यान में रख लें कि चुनाव युद्ध खतम हुआ है, किन्तु सच्चा युद्ध अब शुरू होने को है। और इसी युद्ध के फल पर हमारी भविष्य की सारी आशाएँ अवलंबित हैं।

[ता० ८ मार्च, १९३७]

पण्डित रामभरोस जी मालवीय ने "विश्व का राजनैतिक भविष्य" जो स्वर्गीय पण्डित कृष्णकान्त जी मालवीय के कुछ राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय लेखों का संग्रह है, शाया होने से पहले मुझे पढ़ने को दिया, इस प्रेम के लिये मैं उनका बड़ा मशकूर हूँ। इन लेखों से पता चलता है कि पिछले महायुद्ध के शुरू होने से कहीं पहले एक विद्वान हिन्दुस्तानी देशभक्त लेखक दुनिया की हालत को किस तरह, कितनी अच्छी तरह और कितने साफ़-साफ़ देख रहा था। जगह-जगह पण्डित कृष्णकान्तजी की पेशीनगोइयाँ हैं, जो तब से अब तक सच्ची साबित हो चुकी हैं। कई बातों पर जैसे यह कि राजकाज में 'सिद्धान्तों' का कहाँ तक पालन होना चाहिये और कहाँ तक नहीं। पण्डित कृष्ण-कान्तजी के विचार महात्मा गांधी से नहीं मिलते थे। उन्होंने खुले और निडर होकर गांधीजी का विरोध भी किया। ऐसे कुछ लेख भी इस संग्रह में शामिल हैं। इसमें कोई शक नहीं कि अंतर्राष्ट्रीय स्थिति पर और खासकर पिछले महायुद्धों के बीच की दुनिया की राजकाजी हालत पर "विश्व का राजनैतिक भविष्य" हिन्दी में एक अच्छी, जरूरी और क़ीमती किताब है। पण्डित रामभरोसजी मालवीय ने इसे निकालकर हिन्दी पढ़ने वालों पर बड़ा एहसान किया है।

२२ बाई का बाग़ इलाहाबाद

२०-४-४७

सुन्दरलाल

"विश्व का राजनैतिक भविष्य" शीर्षक से अभ्युदय में प्रकाशित सन् १९१९ से सन् १९३८ तक के स्वर्गीय पण्डित कृष्णकान्तजी मालवीय के लेखों का बहुमूल्य संग्रह आदरणीय बन्धु पण्डित रामभरोस मालवीय के प्रयत्न से हमारे सामने है। इस संग्रह को हमने आद्योपान्त पढ़ा। स्वर्गीय पण्डित कृष्णकान्तजी, जिन्हें हम सब लोग प्रेम और आदर से कृष्णभाई कहते थे, अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति के गहन जानकार थे। उनके ये लेख पढ़कर बार-बार ऐसा सन्देह होने लगता है कि मानों कृष्णभाई ने ये लेख इस मौजूदा युद्ध की परिस्थिति को देखकर लिखे हों। इन लेखों में उन्होंने जो पेशीनगोई की है वह अक्षरशः सच साबित हो रही है। एशिया की एकता सम्बन्धी उनका लेख ऐसा मालूम होता है जैसे एशिया सम्मेलन के अवसर पर लिखा गया है। इस पुस्तक को पढ़कर यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि स्वर्गीय कृष्णभाई अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के प्रकाण्ड पण्डित थे और अपनी उस विद्वत्ता के बल पर वे भविष्यवाणी के अधिकारी थे।

हिन्दी के पाठक इस अनमोल संग्रह को पढ़कर निश्चित ही अपने अन्तर्राष्ट्रीय ज्ञान की वृद्धि करेंगे। यह पुस्तक निस्सन्देह संग्रहणीय है।

हम पण्डित रामभरोसजी के आभारी हैं कि उन्होंने अतीत के गर्भ से निकालकर यह सामग्री पाठकों के लिये सुलभ की।

२८-४-४७

विश्वम्भरनाथ पांडे